१ੴ वाहिगुरू जी की फतहि ॥

235

# सिद्ध गोसटि सटीक

## (सरलार्थ)

11 रुपये

सिख मिशनरी कालेज ( रजिः )

लुधियाना

ੴ वाहिगुरू जी की फतेह॥

# सिद्ध गोस्टि सटीक (सरलार्थ)

*लेखक*

**स. कृपाल सिंघ 'चंदन'**

*अनुवादक*

**स. कुलबीर सिंघ, नई दिल्ली**


प्रकाशक

**सिख मिशनरी कॉलेज (रजि:)**

1051, कूचा 14, फील्ड गंज, लुधियाना - 8 फोन : 663452

सब आफिस : A-143, फतहि नगर, नई दिल्ली - 110 018

जालन्धर आफिस : W.G.-578, सुराज गंज, जालन्धर। फोन : 236947

# सिद्ध गोस्टि



प्रथम हिन्दी संस्करण मई, 2000 2000

**सिख मिशनरी कॉलेज (रजि:)**

1051, कूचा 14, फील्ड गंज, लुधियाना - 8 फोन : 663452

सब आफिस : A-143, फतहि नगर, नई दिल्ली - 110 018

जालन्धर आफिस : W.G.-578, सुराज गंज, जालन्धर। फोन : 236947

# विषय सूची


| क्र. | विषय | पृ. |
|---|---|---|
| 1. | गुरू नानक देव जी व उनकी बाणी | 5 |
| 2. | कुछ योग मत के बारे में | 8 |
| 3. | सिद्ध–गोस्टि कहां हुई | 15 |
| 4. | सिद्ध गोस्टि के बारे में | 18 |
| 5. | सिद्ध गोस्टि का केन्द्रीय भाव | 21 |
| 6. | सिद्ध गोस्टि का सार (प्रश्नोत्तर) | 22 |
| 7. | गृहस्थ : गुरमति व योगमत | 27 |
| 8. | सरलार्थ – सिद्ध गोस्टि | 30 |

# प्राक्कथन

*सति* अर्थात *सत्य* के आशिक और ज्ञान के सूर्य, गुरू नानक देव जी ने जहां स्वयं *सति* अर्थात *सत्य* के संग मेलजोल बढ़ाया, वहीं जीवन भर *सति* अर्थात *सत्य* का प्रकाश व प्रचार करते रहे। आपने लोगों को *सत्य* के संग जोड़ा । जो विचार, मर्यादाएं, रीति-रस्में *सति* तक पहुंचने की राह में रुकावट बनती थीं, सतगुरू बाबा जी उनकी वास्तविकता को बहुत बेबाकी से सामने लाए और लोगों को उन्हें त्याग देने के लिए प्रेरित किया।

सतगुरू जी ने जब देखा कि *सति* (प्रभु) से दूर जा रहे लोग दुखी हो रहे हैं, विह्वल हो रहे हैं, कर्मकांडों में जीवन व्यर्थ गंवा रहे हैं, विकारों की अग्नि में जल रहे हैं और कौमों, जातियों व धर्मों के नाम पर आपस में लड़ रहे हैं, तो लोगों को ऐसी दशा में से निकालने के लिए सतगुरू जी *सति* के प्रचारक बन गए । सत्य के साथ जुड़ कर जो ज्ञान आपने प्राप्त किया था, उस ज्ञान-अमृत की वर्षा द्वारा तपते हुए हृदयों में शांति को बांट कर संचारित किया। भाई गुरदास जी इस तथ्य का वर्णन इस प्रकार करते हैं :

बाबा देखै धिआन धरि, जलती सभि प्रिथमी दिस आई ।।
बाझहु गुरू गुबार है, है है करदी सुणी लुकाई ।।
बाबे भेखा बणाइआ, उदासी की रीत चलाई ।।
चढ़िआ सोधण धरति लुकाई ।। *(वार १)*

*धरति-लुकाई यानी* जनमानस को सीधे रास्ते पर डालने के लिए सतगुरू जी ने भारत के अतिरिक्त श्री लंका, तिब्बत, नेपाल, भूटान, ब्रह्मा, अफगानिस्तान, ईरान, तुर्किस्तान, अरब, इराक आदि देशों का भी भ्रमण किया । कुछ विद्वान यह भी बताते हैं कि उन्होंने चीन और रूस तक का भी रटन किया । प्रभु से प्राप्त हुए *शबद* (सत्य के ज्ञान) के द्वारा आप ने लोगों को एक संतुलित जीवन जीने का मार्ग बताया । अपने प्रचारक दौरों के दौरान, जिन्हें *उदासियां* कहा जाता है, गुरू जी का वास्ता भिन्न-भिन्न धर्मों के अग्रणियों - ब्राहमणों, जैनियों, सरेवड़ों, बौद्धों, काज़ियों, सूफ़ी-संतों, योगियों, वाम-मार्गियों, वैष्णवों आदि से भी पड़ा । गुरू जी ने सब के संग विचार-विमर्श किया और सत्य की प्राप्ति व आदर्श जीवन शैली के बारे में अपने शुभ विचार उनको बताए । इन विचारों को आपने बाणी के रूप में अपने पास

संकलित करके रख लिया।

गुरू साहिब के समय पर सिद्ध-योगियों का बहुत बोलबाला था। रिद्धियों-सिद्धियों के बल पर इन्होंने लोगों को प्रभावित कर रखा था। इन की अपनी फिलासफी थी, जिस को ये सर्वोत्तम फिलासफी समझते थे। गुरू जी की इनके साथ कई बैठकें व गोष्ठियां हुईं। प्रत्येक गोष्ठी में योगियों ने करामातों और अपने मत के सिद्धांतों द्वारा गुरू जी को प्रभावित करने का प्रयास किया पर हर बार उनको गुरू साहिब व गुरमत की उत्तमता के समक्ष शीश झुकाना पड़ा। एक गोष्ठी में तो चर्चा बहुत लंबी चली, जिसको गुरू जी ने बाणी का रूप दे दिया और उस बाणी का नाम *सिध गोसटि* अर्थात *सिद्ध गोष्ठ* रखा। यह बाणी श्री गुरू ग्रंथ साहिब में *रामकली राग* में पन्ना 938 से 949 तक अंकित है।

*गोसटि* शब्द के भावार्थों की व्याख्या करते हुए, ***प्रो प्यारा सिंघ 'पदम'*** लिखते हैं:

"*गोसटि* अर्थात *गोष्ठ* का अर्थ है - बहस या विचार-चर्चा, संवाद। यह एक प्राचीन साहित्य का रूप है जिस में कोई मसला प्रश्नोत्तर के द्वारा स्पष्ट किया जाता है। प्राचीन हिंदी और पंजाबी साहित्य में कई गोष्ठियों का वर्णन मिलता है जिन में तार्किक पक्ष से कई आध्यात्मिक सिद्धांतों तथा धार्मिक विश्वासों की परख व पड़ताल की गई है। जैसे कि सिद्ध-साहित्य में महादेव गोरख गोष्टि, गोरख गणेश गोष्टि, गोरख दत्त गोष्टि आदि। भारतीय-दार्शनिक साहित्य में इसकी परंपरा मौजूद है। पुराने शास्त्रों में एक आम रीति प्रचलित रही है कि किसी गुंझलदार मसले पर वादी, प्रतिवादी नियुक्त करके शंकाएं खड़ी की जातीं हैं और फिर उनका समाधान किया जाता है। शंकावादी आम तौर पर उस मसले के बारे में वे प्रश्न उठाता है, जो भी उस पर उठाए जा सकते हैं और बुद्धिमान आचार्य उन शंकाओं को दूर करके अपना मत निर्दोश बना कर पेश करता है।"

(खोज पत्रिका, नवंबर 1969, पृ 139)

*सिध गोसटि* की बाणी से पता चलता है कि सिद्धों-योगियों ने अपने मत की व्याख्या करके, उसकी महानता दर्शा कर, गुरू जी को परामर्श दिया था कि वे भी घर-बार त्याग कर, योग मत के *आई पंथ* को धारण कर लें

और योग मत की आध्यात्मिक कमाई करें । गुरू जी ने योगियों की बातों को निरर्थक बताया । उन्होंने सिद्ध-योगियों को समझाया कि वे संपूर्ण जनमानस को *आई पंथ* समझें और *शबदगुरू* के रास्ते पर *चल* कर अपना जीवन सफल करें ।

जब योगी गुरू नानक देव जी को अपने मत के सिद्धांतों तथा मर्यादा द्वारा प्रभावित करने में असफल हो गए तो उन्होंने गुरू जी के मत (गुरमत/सिख धर्म) के बारे में अनेकों प्रश्न किए । जैसे - सिख मत क्या है और उसका मनोरथ क्या है, गुरू की क्या महानता है, गुरू के मिलने की क्या निशानी है, शबद क्या है, शबद का निवास कहां है, संसार की रचना से पूर्व शबद कहां पर बसता था, माया से मुक्त कैसे हुआ जा सकता है, ईश्वर की प्राप्ति कैसे हो सकती है, संसार-सागर में से कैसे पार हुआ जा सकता है, ज्ञान प्राप्ति का क्या तरीका है, शांति कैसे प्राप्त हो सकती है, मौत के भय से कैसे बचा जा सकता है, मन टिकाने का साधन क्या है, सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई, संसार-उत्पत्ति से पूर्व ईश्वर कहां निवास करता था? आदि आदि ।

गुरू जी ने योगियों के सारे प्रश्नों के उत्तर बहुत तर्कपूर्ण ढंग से दिए। इस के साथ ही आप ने अपनी ओर से गुरमति की भरपूर व्याख्या की। जहां गुरू जी के उत्तर बहुत संक्षिप्त व स्पष्ट थे, वहीं आप ने योग-मत की शब्दावली का प्रयोग करके गुरमत सिद्धांतों को समझाया । आपने गुरमति की व्याख्या काफी विस्तार सहित की ।

गुरू साहिब के ईश्वरीय ज्ञान, तर्क और मोहित कर लेने वाले वचनों द्वारा बहुत अड़ियल योगी भी वशीभूत हो जाते थे और कई तो गुरमति के धारणकर्ता बन जाते थे । पहली उदासी यानी प्रचारक दौरे के समय योगियों के साथ हुई चर्चा के कारण ही तो *गोरख मता* नामक स्थान, *नानक मता* में बदल गया था ।

इस पुस्तक के इस हिंदी संस्करण में *सिद्ध गोसटि* नामक बाणी के अर्थों के साथ शुद्ध उच्चारण के बारे में भी जानकारी दी गई है, जोकि गुरबाणी व्याकरण पर आधारित है। इस के साथ योग मत की विचारधारा व साधना की आवश्यक जानकारी भी दी गई है । आशा है कि यह पुस्तक गुरमति और योग-मत के परस्पर संबंधों का सही निर्णय करने में सहायक सिद्ध होगी ।

*दास - लेखक*

## (1) *गुरू नानक देव जी व उनकी बाणी*

सिख धर्म के संस्थापक श्री गुरू नानक देव जी की जीवन यात्रा लगभग साढे सत्तर साल (15 अप्रैल, 1469 से 22 सितंबर, 1539) की बनती है । बचपन से ही आप विश्व-उद्धार के काम में लग गए थे । धर्मशाला में जब आपने अध्यापकों को आध्यात्मिक प्रश्न पूछे, तो वे मुंह में उंगलियां डाल कर बैठ गए । अभी नौ वर्ष की आयु के ही हुए थे कि माता-पिता ने आपको जनेऊ धारण करवाने के लिए बहुत से लोगों को बुला कर महोत्सव किया । पर आपने भरे इजलास में पंडित हरदयाल को कुछ ऐसे प्रश्न किए कि पंडित का सारा ज्ञान-ध्यान, धरा-का-धरा रह गया । गुरू जी उन्हें कहने लगे : शुभ गुणों का जनेऊ ला कर दो, यह कच्चे धागे का जनेऊ मैं नहीं धारण कर सकता । पंडित हैरान था कि नौ साल के बालक ने शास्त्रों-स्मृतियों के धर्म को ललकारा है । इसके पश्चात तो बस आप अपनी विचाराधारा के प्रचार में ही जुट गए और जीवन के अंत तक धर्म-प्रचार का कार्य करते रहे । आपके समूचे जीवन को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है :

(क) तलवंडी में : 15 अप्रैल, 1469 से अक्तूबर 1504 तक साढे पैंतीस साल । आयु 7 साल, *पांधे* यानी अध्यापक के पास पढ़ने गए। आयु 9 साल: जनेऊ धारण करने की रस्म, पंडित हरदयाल को उपदेश । आयु 18 साल: विवाह, बटाले के बाबा मूलचंद की लड़की बीबी सुलखणी के संग ।(संतान-बाबा श्री चंद और लखमी दास) आयु 20 साल: उपराम व मौन, वैद की साखी । आयु 34 साल: साखी सच्चा सौदा । भाई मर्दाना जी के संग मेल । आयु 35 साल 6 माह: बीबी नानकी जी के पति, भाई जैराम जी के पास सुल्तानपुर गए ।

(ख) सुल्तानपुर में : अक्तूबर 1504 से सितंबर 1507 - तीन साल । नवाब दौलत खान के मोदी बने । भाई भगीरथ व भाई मनसुख सिख बने । एक दिन वेईं नदी में अलोप हो गए । तीसरे दिन प्रकट हो कर, नारा लगाया *न को हिंदू न मुसलमान ।* शाही मस्जिद में सच्ची भक्ति का उपदेश

दिया । यहां से धरती के लोगों को सीधे रास्ते डालने को चल पड़े ।

(ग) पहली उदासी (प्रचारक दौरा): सितंबर 1507 से दिसंबर 1515 तक - सवा आठ साल । हिंदू तीर्थों की ओर गए । पाखंडों, अंध विश्वासों, कर्मकांडों को त्यागने व एक प्रभु का स्तुति गायन करने का उपदेश दिया । इस उदासी अथवा प्रचारक दौरे के समय एमनाबाद, हरिद्वार, गोरख-मता, अयोध्या, प्रयाग(अलाहबाद), बनारस, गया, गोहाटी, ढाका, जगन्ननाथ, संगलाद्वीप(श्रीलंका) उज्जैन, बढ़ौदा, द्वारिका, आबू पर्वत, अजमेर, पुष्कर, मथुरा, दिल्ली, कुरुक्षेत्र आदि स्थानों पर गए ।

(घ) तीसरी उदासी (प्रचारक दौरा): सन् 1518 से 1521 तक - तीन साल । मुसलमान मत के धर्म स्थानों की ओर । इस उदासी में आप पाकपटन, तुलंभा, मक्का, मदीना, बगदाद, बलख, काबुल, पेशावर(गोरख हटड़ी), हसन अब्दाल, सैदपुर(एमनाबाद) आदि स्थानों पर गए । आप ने लोगों को रोज़े रखने, सुन्नत करवाने, मकबरों की पूजा करने, पाखंड धारण करने आदि से वर्जित किया और समझाया कि प्रभु का नाम सुमिरन करना ही वास्तविक बंदगी है और कीर्तन उसका उत्तम साधन है । यह भी समझाया कि ईश्वर किसी सातवें आसमान या केवल काबा में ही नहीं रहता है, वह तो सर्वव्यापक है और प्रत्येक मनुष्य के अंदर उस की ज्योति है ।

जब वापसी पर सैदपुर पहुंचे तो कुछ दिनों के पश्चात बाबर ने हमला कर दिया । आपने लोगों को निर्भय होने की प्रेरणा की । बाबर की सेनाओं ने आप को कैद कर लिया । इस आक्रमण के बारे में आपने चार शबदों की रचना की जिन में से तीन *आसा राग* में व एक *तिलंग राग* में हैं। आपने बाबर के अत्याचारों और पठान-हाकिमों के नीच-जीवन व डरपोक स्वभाव, दोनों की निंदा की । आप ने समझाया कि यदि मनुष्य पहले ही प्रभु का सुमिरन करे, निर्भय व निरवैर हो, ऐशप्रस्ती की जगह सदाचारी जीवन जीए तो वह ख्वार नहीं होता है ।

(ङ) करतारपुर में - नवंबर 1521 से सितंबर 1539 तक - लगभग 18 साल । यहां पर नाम का जाप, धर्म व परिश्रम की कमाई करने व मिल-बांट कर सेवन करने की व्यवहारिक शिक्षा दी । सुबह धर्मशाला में नित्तनेम तथा कीर्तन होता, फिर खेतों में काम, व शाम को *सो दरु* का पाठ,

कीर्तन व आध्यात्मिक विचार-विमर्श होता । वृद्धावस्था में भी आप करतारपुर से दूर-दूर तक प्रचार करने जाते रहे ।

अचल, मुलतान व स्यालकोट के प्रचारक दौरे के समय, मार्च 1539 में शिवरात्रि के अवसर पर बटाला के समीप अचल में आ गए । योगियों के साथ लंबी चर्चा हुई । फिर मुल्तान तथा स्यालकोट हो कर करतारपुर आए।

बाबा लहणा जी सन 1532 में शरण आए ।

सतगुरू जी ने *आसा की वार, जपु, ओऽअंकार, तुखारी राग का 'बारह माहा'* आदि बाणियों की रचना की । *सिध गोसटि* भी यहीं पर लिखी।

गुरू अंगद साहिब को गुरगद्दी प्रदान की और स्वयं 22 सितंबर सन 1539 को ज्योति में विलीन हो गए ।

---

## (2) कुछ योग मत के बारे में

योग-मत भारत का बहुत पुराना मत है । योगी शिव जी के भक्त हैं, जिस को वे महांयोगी व सर्वप्रथम योगी मानते हैं । योगी भैरों की पूजा भी करते हैं । भैरों को वे शिवजी का अवतार मानते हैं ।

योग के 12 पंथ :

योगियों के नीचे लिखे 12 पंथ हैं :

हेतु, पाव, आई, गमय, पागल, गोपाल, कंथड़ी, बन, धवज, चोली, रावल और दास । आई पंथ के योगी अपने पंथ को सर्वोत्तम पंथ मानते हैं। पहले-पहल *योग* को ज्ञान का मत कहा जाता था । योगी मन की वृत्तियों(लहरों/तरंगों) पर नियंत्रण करने के लिए बहुत करड़ी साधना किया करते थे और बहुत करड़े अनुशासन में रहते थे । समय पा कर इस मत में दोश आ गए । कठिन साधना का स्थान शराब और चरस आदि नशों ने ले लिया और कई योगी मास भी खाने लग गए । *ज्ञान* का स्थान *पाखंड* ने ले लिया । आजकल सभी योगी रुद्राक्ष की माला पहनते हैं । गोरख नाथ के पंथ के योगी कान पड़वाते अर्थात छिदवाते हैं, कानों में लकड़ी, शीशे या पत्थर की बड़ी-बड़ी मुद्राएं पहनते हैं । इन के नाम के पीछे *नाथ* शब्द आता है । औघड़ या ओघड़ योगियों के नाम के साथ *दास* शब्द जुड़ा होता है ।

योग का अर्थ :

मन की चंचल प्रक्रिया को रोकना योग है । मन की चेतन धारा को रोक कर अपने अधीन कर लेना, ताकि यदि हम इस को जिधर ले जाना चाहें चला सकें । योग के अनुशासन का उद्देश्य ही यही है कि चित्त या मन, वृत्तियों का दास न बने, बल्कि इन वृत्तियों को अपना दास बना कर रखे ।

(गुरदेव सिंघ/खोज पत्रिका/नवंबर, 1969/पृ 219)

योग मत के प्रथम दार्शनिक पतंजली ने मनोवृत्तियों के निरोध को योग कहा है :

योगश्च चित्त वृत्ति निरोध ।। (पातंजली दर्शन, पाद-1, सूत्र-2)

पातंजली ऋषि ने अपने योग-दर्शन के चार वर्ण बनाए हैं और इन चारों वर्गों या अध्यायों के नीचे लिखे नाम रखे हैं :

समाधि पाद, साधना पाद, विभूति पाद और कैवल्य पाद ।

*समाधि पाद* में योग के सिद्धांतों की व्याख्या है: *साधना पाद* में साधना या अभ्यास की विधियां हैं, *विभूति पाद* में रिद्धियों-सिद्धियों का वर्णन है और *कैवल्य पाद* में मन की शक्ति के अपने स्वरूप में स्थिर होने पर प्रकाश डाला गया है ।

**योग का लक्ष्य:**

योग का लक्ष्य है कि मनुष्य पत्थर रूप हो जाए - इंद्रियों पर मन के फुरने का कोई असर ही न हो, और शरीर मुर्दे के समान हो जाए । इस अवस्था का नाम *कैवल्य* रखा गया है ।

प्राचीन काल में यह माना जाता था कि मानव शरीर में 72 हजार नाड़ियां हैं जो दिल में से फूटती हैं । जिस जिस स्थान पर ये नाड़ियां चारों ओर से आ कर मिलती हैं, वहां पर *पदम* या *कमल* बनते हैं । यह कमल हर प्रकार के शारीरिक काम करने के लिए शक्ति के स्रोत माने गए हैं। *कठ-उपनिषद में लिखा है दिल में इकहत्तर सौ नाड़ियां हैं । उन में से एक (सुखमना) सिर को जाती है । मौत के समय इस के रास्ते जीवन ऊपर चढ़ कर अमर हो जाता है ।'*

*ज्ञान सरोदय* (प्राणायाम की एक शाखा) के अनुसार एक नाड़ी *इड़ा* दाईं नासिका को आती है और *पिंगला* बाईं नासिका को । *सुखमना* दसम-द्वार को जाती है ।

**योग के आठ अंग:**

पातंजली के योग-शास्त्र के दूसरे अध्याय, *साधना पाद* में योग के आठ अंगों की चर्चा की गई है जो इस प्रकार हैं : यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रतिआहार, धारना, ध्यान, समाधि ।

(1) यम : दूसरों के साथ साफ-सुथरा व्यवहार करने के लिए अपने पर लगाई गई पाबंदी का नाम यम है । भ्रातृत्व जीवन को सामान्य रखने के लिए इसकी अत्यंत आवश्यकता है । यम दस प्रकार का निश्चित किया गया है :

(क) हिंसा मन, वचन और कर्म के द्वारा किसी को भी दुख क्लेश न देना।

(ख) सत्य सत्य बोलना ।

(ग)असत्य परधन का त्याग अथवा कोई भी पराई वस्तु अंगीकार नहीं करनी।

(घ) ब्रह्मचर्य काम-वासना के अधीन न होना ।

(ङ) क्षमा — शब्द-कुशब्द दोनों को एक समान सहारना ।

(च) धैर्य — सुख व संकट के समय अडोल-चित रहना ।

(छ) दया — शत्रु और परदेसी के साथ मित्र वाला प्यार करना ।

(ज) आर्जव — सादगी अथवा सादा जीवन ।

(झ) मिताहार — थोड़ा आहार खाना ।

(ञ) शौच — अंदर व बाहर की पवित्रता ।

(2) नियम- अपने अंदर शांति कायम रखने के लिए अपने ऊपर लगाई हुई पाबंदी का नाम *नियम* है । नियम की नीचे लिखी दस किस्में हैं:

(क) तप — सर्दी, गर्मी आदि द्वंद सहन करने का नाम तप है ।

(ख) संतोष — स्वभाविक आए दुख-सुख को खिले माथे सहारना।

(ग) आस्तिकता — परमात्मा के अस्तित्व को मानना ।

(घ) दान — हक की कमाई में से भले पुरुषों की सेवा करना ।

(ङ) ईश्वरभक्ति — परमात्मा की पूजा ।

(च) सिद्धांत श्रवण — धर्म-ग्रंथों को सुनना और मानना ।

(छ) ह्र (लज्जा) — कोई मंदकर्म करने से मन में संकोच करना ।

(ज) मती(श्रद्धा) — धर्मशास्त्र द्वारा दर्शाए काम को करने में दृढ़ विश्वास।

(झ) जप — मंत्र का बार-बार उच्चारण करना ।

(ञ) हुती — हवन ।

(3) आसन -बैठने का विशेष ढंग । आसनों के अभ्यास से शरीर तथा रक्त चाप ठीक रहता है । शरीर के सारे पट्ठे स्वस्थ तथा साफ रहते हैं और सारी अंतड़ियों की प्राकृतिक चाल ठीक दशा में टिकी रहती है । शरीर स्वस्थ रहता है । आसन 84 माने गए हैं ।

(4) प्राणायाम - कुछ नियमों के अनुसार सांस अंदर खींचना(पूरक), बाहर निकालना(रेचक) और अंदर रोक कर रखना(कुंभक) - इस अभ्यास को प्राणायाम कहते हैं । इस अभ्यास का मुख्य मंतव्य यह है कि *प्राण-वायु* को *अपान वायु* (बिल्कुल नीचे की वायु) से मिला कर धीरे-धीरे ऊपर खींचा जाए । इस तरह करने से धुनी के पास जो अनोखी शक्ति *कुंडलिनी* गुंझल बनाए बैठी है, वह जागृत हो जाती है और रिद्धियां-सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं ।

(5) प्रत्तिआहार- इंद्रियों का अपने-अपने काम से रुक जाना।

(6) धारणा - चित्त को किसी स्थान पर बांध कर, टिका कर

रखना । इसलिए सुरति को शरीर की किसी आंतरिक या बाह्य वस्तु पर टिकाया जाता है ।

(7) ध्यान - धारणा जब कुछ सीमा तक पक जाए, तो उसको ध्यान कहते हैं । मन ध्यान-धरी हुई वस्तु के संग जुड़ जाता है, इधर-उधर भटकता नहीं ।

(8) समाधि- समाधि *ध्यान* से अगली अवस्था है, जब मन अपना स्वरूप भूल कर *ध्यान* वाली चीज ही बन जाता है । ज्ञाता, ज्ञान का रूप ही हो जाता है ।

खट कर्म:

जो योगी उपर्युक्त वर्णित आठ अंगों द्वारा शरीर को शुद्ध न कर सकें, उन को नीचे दिये गए छः प्रकार के और अभ्यास करने पड़ते हैं।

(क) नेती- मुलायम सूत्र का 11 इंच लंबा धागा लेकर, एक नासिका द्वारा ऊपर चढ़ा कर, मुंह में से निकाल कर नासिका में फेरना । फिर यही क्रिया दूसरी नासिका द्वारा करना ।

(ख) धोती - तीन-इंच चौड़ी, पंद्रह हाथ लंबी नर्म बारीक कपड़े की पट्टी पानी से गीली करके निगलना और फिर बाहर निकालना ।

(ग) बस्ती - गुदा के रास्ते पानी ऊपर खींच कर फिर बाहर निकालना ।

(घ) निउली - कमर व पेट सीधे रख कर, झुक कर, हाथ घुटनों पर रख कर अंतड़ियों को घुमाना ।

(ङ) त्राटक - नाक की कूमली पर ताड़ी लगाना ।

(च) गज कर्म- मेहदे को गले तक पानी से भर कर और भौहों के बीच नजर टिका कर कै (उल्टी) करना ।

उन्नमनी अवस्था:

जब नाड़ियां साफ हो जायं तो सुखमना नाड़ी खुल जाए, तब योगी के मन में वह शांति पैदा हो जाती (मानी गई) है जो समाधि का अति आवश्यक लक्ष्य है । उस शांत अवस्था का नाम उन्नमनी अवस्था है ।

सिद्धियां :

सिद्धि से भाव योग-साधना द्वारा प्राप्त की हुई आठ करामाती शक्तियां

है। ये इस प्रकार हैं : अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकामय, ईशिता, वशिता ।

(क) अणिमा -दूसरे का रूप हो जाना ।

(ख) महिमा- शरीर को विशाल कर लेना ।

(ग) लघिमा- शरीर को छोटा कर लेना ।

(घ) गरिमा- भारी हो जाना ।

(ङ) प्राप्ति- मनइच्छित भोग प्राप्त कर लेने की सामर्थ्य ।

(च) ईशिता- अपनी इच्छा के अनुसार सब को प्रेरित करना।

(छ) वशिता- सब को वश में कर लेना ।

मुद्रा तथा बंध:

प्राणायाम की सहायता के लिए कुछ क्रियाएं करनी पड़ती हैं, जिन को मुद्रा और बंध कहा जाता है ।

(क) मुद्रा दस हैं : महा मुद्रा, महा वेध, खेचती, भूचरी,चाचरी, विपरीत करणी, वजरोली, शक्ति चालन, अगोचरी, उन्नमनी ।

खेचरी मुद्रा में योगी जिह्वा को हलक में निगल लेता है, जिस से खुली सांस आनी बंद हो जाती है । फेफड़ों को हवा से भर कर शरीर के सभी छिद्र मोम या रूई के बुड़ों से बंद कर दिए जाते हैं ।

भूचरी- पदम आसन लगा कर नाक की नोक पर ध्यान लगाना।

चाचरी- आंखों से तीन इंच ऊपर नज़र जमाना ।

(ख) बंध चार हैं : मूल बंध, जालंधर बंध, उदिआन बंध और महा बंध।

मूल बंध- बाईं एड़ी गुदा पर और दाईं लिंग पर दबा कर, पदम आसन लगा कर बैठना, गुदा का रास्ता बंद कर देना ताकि हवा बाहर न निकले ।

अनहद नाद- संगीतमय आवाज या आवाजें, जो योगी दसम द्वार में सुनते हैं, उसको अनहद(अनहत) नाद कहा जाता है । मन की आंतरिक लहरों/तरंगों को रोकने के लिए अनहद नाद पर मन टिकाया जाता है । इस प्रकार पूर्ण एकाग्रता प्राप्त करके अनंद की प्राप्ति होना माना जाता है।

अनहद नाद की प्रक्रिया

योग-मत के अनुसार रीड़ की हड्डी(नाड़ी) के बाएं व दाएं दो प्रकार की नाड़ियां चलती हैं । इन को *इड़ा* और *पिंगला* कहते हैं । रीड़ की

हड्डी(नाड़ी) के केंद्र में एक खाली नाड़ी बहती है जिस को *सुखमना* कहते हैं । नाड़ी के निचले सिरे पर तिकोनी शक्लि का कुंडलिनी कमल हैं, जहां कुंडलिनी(सर्प शक्ति) है । इस को शक्तियों का भंडार माना जाता है । इस को प्राणायाम के द्वारा जागृत किया जाता है । डोरी का आरंभिक सिरा दिमाग के अंदर है जहां सहंसर दल कमल माना गया है। पांच कमल(शक्ति केंद्र) डोरी(नाड़ी) के और भी हैं जिन में से मूल धारा आखिरी है और इन छः को ही जीतना होता है । योगी श्वासों को सहजे-सहजे व तोल-ताल(Rhythm) से बाई सुर(इड़ा) के द्वारा फेफडों के अंदर ले जाता है और साथ ही अपने मन को डोरी के बाएं मार्ग(इड़ा) की नस-धारा (Nerve Current) में टिकाता है । इस प्रकार वह नसधारा को आगे चलाते हुए इसको कुंडलिनी कमल पर जोर से टकराता है । फिर कुछ समय वहीं रुक कर, इस को श्वासों के साथ ही पिंगला के द्वारा बाहर निकाल देता है। फिर दाई सुर(नासिका) से शुरू करता है और पहले की तरह सुखमना के अंतिम सिरे पर रोकता है और फिर बाई सुर के द्वारा बाहर निकालता है । योगी का यह दावा है कि दिमाग का वह केंद्र जो फेफड़ों की चाल को नियंत्रित करता है, अन्य स्थानों पर भी असर करता है । इस अभ्यास द्वारा कुंडलिनी खुल जाती है और गुप्त शक्तियां उत्तेजित हो जाती हैं । सुखमना की गुंझल खुलने से ही सहंसर-दल कमल खिलता है, अनहद शब्द बजता है, जिस को सुनने पर उस में *खीवे* होने की महानता की बहुत मान्यता है ।''

(स. नरैण सिंघ, अमृतसर/सिध गोसटि दा पिछोकड़(पंजाबी)/पृ 27)

**योग की किस्में :**

योग की चार किस्में हैं: मंत्र योग, लय योग, राज योग व हठ योग।

(क) मंत्र योग - किसी रेवता के नाम का, या किसी अन्य शब्द का एकरस दिल लगा कर जाप करना ।

(ख) लय योग - किसी चीज या उस के ख्याल पर ऐसा मन जमाना कि उस से एकरूप हो जाए ।

(ग) राज योग -सांस को इस तरह रोकना कि उस से मन की दौड़ मिट जाए।

(घ) हठ योग - कई प्रकार के आसन करके मन की स्थिरता प्राप्त करना।*

## (3) सिद्ध–गोष्ठ कहां हुई?

श्रीगुरू नानक देव जी ने अपना अंतिम प्रचारक दौरा(उदासी) सन 1521 के नवंबर महीने में समाप्त किया था । फिर आपने आयुपर्यंत करतारपुर नामक नगर में जीवन गुजारा। यह नगर आपने रावी नदी के किनारे पर, अपनी पहली उदासी के पश्चात बसाया था और आजकल यह पाकिस्तान में स्थित है । यहां पर सतगुरू जी ने अपने सिखों को नाम का जाप करने, परिश्रम द्वारा धनार्जन करने व उसे मिलबांट कर सेवन करने की व्यवहारिक शिक्षा दी । यहां से ही सतगुरू जी पंजाब (तत्कालीन पंजाब, हरियाणा व हिमाचल व पाकिस्तान वाले पंजाब के क्षेत्रों) में दूर-दूर तक धर्म प्रचार करने जाते रहे ।

एक दौरे में आप बटाला से तीन मील की दूरी पर *अचल* नाम के नगर में गए । यहां इसी (अचल) नाम का एक महादेव(शिव जी) का मंदिर बना हुआ है । हर साल शिवरात्रि के अवसर पर(फाल्गुन के महीने में) यहां पर भारी मेला लगता था, जिस में दूर-दूर से योगी पहुंचते थे। सतगुरू जी व भाई मर्दाना जी मार्च सन 1539 में यहां पहुंचे थे । उस समय तक सतगुरू जी की शोभा दूर-दूर तक फैली हुई थी ।

जब सतगुरू जी मेले पर पहुंचे तो भारी संख्या में लोग उनके उपदेश सुनने को उन की सतिसंगत में आ गए । योगियों की ओर बहुत कम लोग गए । इससे योगियों को बहुत ईर्ष्या हुई । सतगुरू जी के पास रासधारी(नाटक मंडली) रास डाल रही थी ।योगियों ने करामाती शक्ति से उन का पैसोंवाला लोटा छिपा दिया । यह कृत्य उन्होंने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए किया था । गरीब रासधारी योगियों के आगे मिन्नतें करने लगे, पर उन्होंने उसे लोटा वापिस न दिया। गुरू जी गरीबों का ऐसा अनादर होता देख कर सहन नहीं कर पाते थे । आप ने लोटा ढूंढ कर, रासधारियों को दे दिया । अतः योगियों की करामात का हथियार फेल होगया । फिर वे बहस करने पर उतर आए । कहने लगे तुमने एक बार फकीरी वेश धारण कर लिया था, तो फिर ग्रहस्थी क्यों बन गए? तुमने तो दूध में कांजी(खटास)

डाल दी है । सतगुरू जी ने बहुत प्यार से समझाया कि मैंने फकीरी धारण नहीं की थी । मैं तो अपने मत के प्रचार के लिए जगह-जगह जाता रहा हूं । दूसरे, तुम ग्रहस्थियों की निंदा करते हो, पह यह तुम्हारे लिए अच्छी बात नहीं क्योंकि तुम अन्न-दाना व वस्त्र इत्यादि के लिए इन ग्रहस्थियों के दर पर ही जा कर अलख जगाते हो । तुम्हारे जैसे बैठे-ठालों से तो परिश्रमी ग्रहस्थी कई दर्जे उत्तम हैं, जो परिश्रम द्वारा धनार्जन करके अपना निर्वाह करते हैं, आगंतुकों व यात्रियों की सेवा करते हैं, और तुम जैसे लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं ।

योगी निरुत्तर हो गए: पर उन्होंने हठ नहीं त्यागा। बल्कि गुरू जी को करामत दिखलाने के लिए कहने लगे । गुरू जी ने समझाया कि परमात्मा के नाम को हृदय में बसाना ही सब से बड़ी करामात है । प्रभु अपने सेवकों के पर्दे ढकेता है और उनके मन को दुख-सुख के समय अडोल रहने का बल प्रदान करता है । उसके सेवक उस की इच्छा में खुश रहते हैं - वह भला करामात क्यों दिखलाएं ? गुरू जी के उपदेशों ने लोगों के मन को मोहित कर लिया और योगी भी उनसे बहुत प्रभावित हुए । उन को विश्वास हो गया किइ गुरू नानक जी को चर्चा में हराना असंभव है, क्योंकि गुरू जी उन विचारों का प्रचार कर रहे थे, जो विचार (ज्ञान) उन्होंने प्रभु के साथ एकासुर होने के पश्चात प्राप्त किए थे । योगियों के साथ हुई चर्चा को, गुरू जी ने बाणी का रूप दे कर *सिध गोसटि* का नाम दिया । इस से पूर्व गुरू नानक देव जी योगियों को गोरख मता(पहली उदासी), सुमेर पर्वत(दूसरी उदासी), गोरख हट्टड़ी, पेशावर(तीसरी उदासी की वापसी पर) में मिल चुके थे । इन मुलाकातों के समय हुए परस्पर विचार मंथन को भी आपने *सिध गोसटि* में शामिल कर लिया ।

इस *गोसटि* से यह पता चलता है कि प्रश्न करने वाले अग्रणी सिद्ध चरपट व लोहारीपा थे । भाई गुरदास जी ने भंगर नाथ का भी जिक्र किया है जिस ने करामातें दिखला कर काफी गड़बड़ फैलाने का यत्न किया था।

चर्चा के समय गुरू नानक साहिब द्वारा दिए गए उत्तरों के ढंग के बारे में प्रोफेसर प्यारा सिंघ *पदम* लिखते हैं :

'इस गोष्टि से जहां गुरू साहिब की तार्किक शक्ति का पता चलता है, वहीं यह भी मालूम होता है कि वे अपनी विचारधारा में कितने स्पष्ट थे और किस तरह विरोधियों द्वारा उठाई गई शंकाओं का सहज निवारण कर सकते थे । यह प्रश्नोत्तरी धर्म के जिज्ञासुओं के काम आने वाली चीज थी, इसलिए आपने इस को छंद-बंदी में गूंथ कर सदा के लिए संभाल दिया । *सिध गोसटि* की यह विशेषता है कि जो उत्तर दिए गए हैं, बहुत स्टीक व संतोशजनक हैं और सारी बात बहुत सहज व संयम भरपूर शैली में कही गई है । इस बहस की पहली शर्त ही यह थी कि *रोस न कीजै, उत्तर दीजै ।* फिर गुरू साहिब यह चर्चा किसी झगड़े के लिए नहीं कर रहे थे, बल्कि यह सारी बातचीत आत्मिक खोज के लिए थी ।' (खोज पत्रिका, नवंबर 1969, पृ 44)

– – – – –

## (4) *सिधि गोसटि* के बारे में

### भाई गुरदास जी का विवरण

भाई गुरदास जी ने अपनी पहली *वार* की काव्य रचना में अचल-बटाला में गुरू साहिब की योगियों के संग हुई चर्चा का विस्तार सहित वर्णन किया है। यथा:

बाबा आइआ करतारपुरि, भेखु उदासी सगलु उतारा ।
पहिर संसारी कपड़े, मंजी बैठ कीआ अवतारा ।
उलटी गंग वहाईओनु, गुरु अंगदु सिर उपरि धारा ।
पुतरी कउलु न पालिआ, मन खोटे आकी निसिआरा ।
बाणी मुखहु उचारीऐ, होइ रुशनाई मिटै अंधिआरा ।
गिआन गोसटि चरचा सदा, अनहद सबद उठै धुनिकारा ।
सोदरु आरती गावीऐ, अंमृत वेले जापु उचारा ।
गुरमुखि भारु अथरबणु तारा । ३८।१।

मेला सुणि शिवराति दा, बाबा अचल वटाले आई ।।
दरसनु वेखण कारने, सगली उलटि पई लोकाई ।।
लगी बरसणि लछमी, रिधि सिधि नउ निधि सवाई ।।
जोगी वेख चलित्र नो, मन विचि रिसक घनेरी खाई ।
भगतीआं पाई भगति आइ, लोटा जोगी लइआ छपाई ।
भगतीआं गई भगति भुलि, लोटै अंदर सुरति भुलाई ।
बाबा जाणी जाण पुरखु, कढिआ लोटा जहां लुकाई ।
वेखि चलित्र जोगी खुणसाई ।।३९।।१।।

खाधी खुणस जोगीसरां, गोसटि करन सभे उठि आई ।।
पुछै जोगी भंगरनाथु, तुहि दुध विचि किउं कांजी पाई ।।
फिटिआ चाटा दुध दा, रिड़किआं मखणु हथि न आई ।।
भेखु उतार उदास दा, वत किउं संसारी रीति चलाई ।।
नानकु आखै, भंगरनाथ,तेरी माउं कुचजी आई ।।
भांडा धोइ न जातिओनु, भाइ कुचजै फुलु सड़ाई ।।

होइ अतीतु ग्रिहसतु तजि, फिरि उनहू के घर मंगण जाई।
बिनु दितै किछु हथि न आई ।।४०।।

एह सुणि बचनु जोगीसरां, मारि किलक बहु रुअ उठाई।।
खाट दरसन कउ खोदिआ, कलियुग बेदी नानक आई ।।
रूप वटाइआ जोगीआं, सिंघ बाघ बहु चलत दिखाई ।।
इकि पर करि कै उडरनि पंखी जिवें रहे लीलाई ।।
इकि नाग होइ पवनु छोडि, इकना वरखा अगनि वसाई ।।
तारे तोड़ै भंगरनाथु, इकि उडि मिरगानी जलु तरि जाई ।।
सिधां अगनि(ईर्ष्या की आग) न बुझै बुझाई ।।१।।

सिध बोले, सुणि नानका! तुहि जग नो करामात दिखाई।।
कुझ दिखाइ असानूं भी, तूं किउं ढिल अजेही लाई ।।
बाबा बोलै, नाथ जी! असां वेखो जोगी वसतु न काई ।।
(हमारे पास जोगियों को दिखाने के लिए कोई चीज़ नहीं है।)
गुर संगति बाणी बिना, दूजी ओट नहीं है राई ।।
शिव रूपी करता पुरखु, चलै नाही धरति चलाई ।।
सिध तंत्र मंत्र करि झड़ि पए, सबदि गुरू के कला छपाई।।
ददै दाता गुरू है, ककै कीमति किनै न पाई ।।
सो दीन नानक सतिगुर सरणाई ।।४२।।

बाबा बोलै, नाथ जी! सबद सुणहु सचु, मुखहु अलाई ।।
बाझहु सचे नाम दे, होर करामाति असाथे नाहीं ।।
करउं रसोई सार दी, सगली धरती नथि चलाई ।।
बसत्र पहिरिउं अगनि के, बरफ हिमालै मंदरु छाई ।।
एवड करीं विथार कउ, सगली धरती हॅकी जाई ।।
तोलीं धरति अकासु दुइ, पिछे छाबै टेकु चढ़ाई ।।
इह बलु रखां आप विचि, जिसु आखां तिसु पारि कराई ।।
सतिनाम बिनु बादर छाई ।।४३।।

बाबै कीती सिध गोसटि, सबदि शांति सिधां विच आई ।।
जिणि मेला शिवराति दा, खाट दरशन आदेसु कराई ।।
सिध बोलनि शुभ बचन, धंन नानक तेरी वडी कमाई ।।
वडा पुरखु परगटइआ, कलिजुग अंदरि जोति जगाई ।।
मेलिउं बाबा उठिआ, मुलतानै दी ज़िआरति जाई ।।
अगहु पीर मुलतान दे, दुध कटोरा भरि लै आई ।।
बाबे कढि करि बगल ते, चंबेली दुध विचि मिलाई ।।
जिउं सागर विचि गंग समाई ।।४४।।

-----

## (5) *सिध गोसटि* का केंद्रीय भाव

गुरबाणी की लेखन विधि के अनुसार प्रत्येक *शबद* में ***रहाउ*** शब्द लिखा गया है । कहीं-कहीं *रहाउ* एक से अधिक बार भी आया है । इसका अर्थ है - रुको, ठहर जाओ । भाव कि जिन पदों के पश्चात शब्द *रहाउ* लिखा गया है, उन के अर्थों पर विशेष बल देने की जरूरत है क्योंकि इन पदों में शबद का प्रमुख भाव या केंद्रीय भाव है । बाकी सारे शबद में इस मुख भाव की व्याख्या की गई होती है ।

शबदों की तरह कई लंबी बाणियों में भी *रहाउ* शब्द लिखा होता है, जैसे *सुखमनी* में, पहली अष्टपदी के पहले पदे के पश्चात लिखी गई पंक्तियां *-सुखमनी सुख अंमृत प्रभ नामु । भगत जना कै मनि बिस्राम'* के अंत में भी *रहाउ* लिखा हुआ है । अतः ये पंक्तियां सारी *सुखमनी* बाणी का मुख भाव हैं।

इसी प्रकार *ओऽअंकार* नाम की बाणी का मुख्य भाव भी नीचे लिखी *रहाउ* की पंक्ति में है :

सुणि पाडे, किआ लिखहु जंजाला ।।
लिखु राम नाम, गुरमुखि गोपाला।।१।।रहाउ।।

*सिध गोसटि* में भी पहली पउड़ी के पश्चात *रहाउ* की नीचे लिखी पंक्तियां लिखी हुई हैं :

किआ भवीऐ, सचि सूचा होइ ।।
साच सबद बिनु मुकति न होइ ।।

इसका अर्थ है -गृहस्थ छोड़कर जगलों या तीर्थों पर घूमने का कोई लाभ नहीं । गृहस्थ छोड़ने से शुचि या पवित्रता नहीं आ सकती । धन दौलत के बंधनों से आज़ादी नहीं मिलती है । परमात्मा की याद में जुड़ने से ही मन पवित्र होता है । जब तक परमात्मा के स्तुतिगायन की बाणी में मन न जुड़े, धन-दौलत के आकर्षण से मुक्ति नहीं होती है ।

यह है *सिध गोसटि* का मुख्य ख्याल, केंद्रीय भाव यानी रहाउ और सारी *सिध गोसटि* में इसी विचार की व्याख्या की गई है ।

## (6) *सिध गोसटि* का सार

(सिद्धों के बीच गुरू नानक साहिब के प्रश्नोत्तर के रूप में)

प्रश्न: आपका मत क्या है और उसका मनोरथ क्या है ?

उत्तर: मेरा मत सति-संगत का आश्रय लेकर प्रभु का सुमिरन करना है । मनुष्य की सब से बड़ी बुद्धिमता यह है कि वह गुरू के बताए हुए रास्ते पर चल कर अपने आप को पहचाने और प्रभु चरणों में जुड़ा रहे।

प्रश्न: आपके मत के अनुसार संसार समुद्र में से कैसे पार हुआ जा सकता है ?

उत्तर: जो मनुष्य गुरू के शबद के द्वारा एक प्रभु को अपने मन में बसाए रखता है वह दुनियावी आशाओं के जाल से विरक्त रहता है, और इस तरह संसार में मेहनत-मजदूरी करते हुए भी मायाजाल से ऐसे अछूत रहता है, जैसे कीचड़ में कंवल फूल कीचड़ से बचा रहता है, या फिर जैसे मुर्गाबी के पंख पानी में नहीं भीगते।

प्रश्न: आप जो कहते हैं कि गुरू के द्वारा संसार-समुद्र पार होता है, यह कैसे पता लगे कि गुरू मिल गया है ?

उत्तर: गुरू के मिलाप की निशानी यह है कि चंचल मन चंचलता छोड़ कर प्रभु की याद में जुड़ा रहता है । परमात्मा का नाम मनुष्य के जीवन का सहारा बन जाता है । यह निधि अकालपुरख की कृपा से ही प्राप्त होती है ।

प्रश्न: हमारे मत की विचारधारा के अनुसार, दुनियां के धंधों से निर्लिप्त रहने, घर-बार छोड़ कर वृक्षों के नीचे रहने व कंद-मूल खा कर गुजारा करने और तीर्थों पर स्नान करने से मन को विकारों की मैल नहीं लगती और मन सुखी रहता है । आपका क्या विचार है ?

उत्तर : जो मनुष्य सतगुरू की मति ले कर प्रभु के नाम का सुमिरन करता है, वह घर-बारी होते हुए भी धंधों में डूबता नहीं । उसका मन सदा अडोल रहता है, कोई सांसारिक लत या चस्का उसको नहीं लगता ।(यह गुरमति का मार्ग है )।

प्रश्न: यदि योगियों के *आई पंथ* का पाखंड धारण किया जाए- मुंद्राएं, झोली व गोदड़ी पहनी जाए, तो क्या मन माया की चोट से बच सकता है?

उत्तर: (माया की चोट से गुरू का शबद ही बचा सकता है)। शबद को मन में बसाना, कानों की मुंद्राएं हैं, हर स्थान पर प्रभु को व्यापक जानना गोदड़ी है, नाम की कृपा से सांसारिक इच्छाओं की ओर से मुड़ी हुई सुरति *खप्पर(*भीख मांगने वाला खोल) है, शरीर को विकारों से पवित्र रखना *दभ* का आसन है, वश में आया हुआ मन लंगोटी है । अतः, गुरू की शरण में आ कर प्रभु के नाम का सुमिरन ही करो।

प्रश्न: वह कौन है जिसको आप *भरपूरि रहिआ* कहते हो ? मन- तन से लीन कैसे होते हैं और मुक्त कैसे होते हैं ?

उत्तर: परमात्मा ही हर स्थान पर, हर जीव में *भरपूरि रहिआ है* व्यापक है । गुरू के शबद द्वारा उस में तन-मन से लीन हुआ जा सकता है और संसार सागर से मुक्ति प्राप्त हो सकती है । पर जो मनुष्य अपने मन के पीछे चल कर, मुंद्राएं, खिंथा आदि धारण करता है, फिर भी वह जन्म व मृत्यु के भंवर में पड़ा रहता है ।

प्रश्न: यह जीव इस तरह बंधा पड़ा है कि माया- सर्पनी इसको खाए जा रही है, पर यह अपने आप को बचाने के लिए भाग भी नहीं सकता ?

उत्तर: मनुष्य खोटी मति का शिकार रहता है, माया-सर्पणी उस को अंदर-ही-अंदर खाए जाती है, पर चस्कों व स्वादों में से निकलने को मन नहीं करता, चस्कों का अंधकार इसको अच्छा लगता है ।

प्रश्न : माया अथवा धन- दौलत के स्वाद की कैद में से कैसे निकला जा सकता है ?

उत्तर: जो मनुष्य गुरू के बताए रास्ते पर चलता है, उसका मन चस्कों से ऊपर उठ कर एक ऐसी अवस्था पर पहुंचता है, जहां माया वाली भटकन महसूस ही नहीं हो सकती, जहां माया वाले ख्याल मन में नहीं रहते । इसलिए घर का त्याग करने या किसी गुफा में समाधि लगाने की जरूरत नहीं । गृहस्थ में ही सहज(आत्मिक अडोलता) की गुफा में समाधि लगाने से आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है ।

प्रश्न :जब आप हमें सुमेर पर्वत पर मिले थे, तब आपने ***उदासी वेश*** धारण कर रखा था । यदि ***हाटी बाटी***(गृहस्थ) का त्याग नहीं करना था तो घर क्यों छोड़ा था ? इस संसार सागर से पार होने के लिए अपने सिखों को कौन सा रास्ता बताते हो ?

उत्तर: हम तो तब गुरमुखों को ढूंढने के लिए घर से निकले थे । संसार-सागर को पार करने के लिए गृहस्थ त्याग की जरूरत नहीं । मनुष्य गुरू के सम्मुख हो कर यदि प्रभु का सुमिरन करे तो विकारों की मार से बच सकता है ।

प्रश्न: दुनियां में रह कर माया के प्रभाव से बचना वैसे ही बहुत कठिन है, जैसे कोई मनुष्य दांतों के बिना लोहा चबाने की कोशिश करे । हे नानक! तूने अपना जीवन कैसे पलट लिया है ? मन की आशाओं और मन के ख्याल कैसे मिटा लिए हैं ? तुझे ईश्वरीय प्रकाश कैसे प्राप्त हो गया है ?

उत्तर: यद्यपि, माया व धन दौलत की मार से बचना है तो लोहा चबाने के समान ही, पर मैं ज्यों-ज्यों गुरू की शिक्षाओं पर चला, मेरे मन की भटकन समाप्त होती गई। मुझे ज्यों-ज्यों प्रभु चरणों में जु2ड़ने का आनंद आया, मेरा मन आनंदित होता गया । गुरू के शबद की कृपा से मेरे मन के ख्याल और दुनियां वाली आशाएं आकांक्षाएं मिटती गई । मुझे ईश्वरीय

ज्ञान मिल गया और माया मेरे समीप भी न आ सकी । यह सब प्रभु की कृपा ही थी ।

प्रश्न: सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में आपका क्या ख्याल है? जब संसार नहीं होता, तब निर्गुण- रूप प्रभु कहां टिका रहता है? यह जीव कहां से आता है ? कहां चला जाता है ?

उत्तर : सृष्टि की उत्पत्ति की विचार बहुत हैरानी पैदा करती है । कोई भी इस बारे में कुछ बता नहीं सकता । जब संसार नहीं था, तो प्रभु अपने आप में ही टिका हुआ था । संसार की रचना हो जाने के पश्चात यह जीव प्रभु के आदेश में ही संसार में आता है और आदेश में ही इस संसार में से चला जाता है ।

प्रश्न: ज्ञान प्राप्त करने का क्या साधन है ? मृत्यु का भय कैसे दूर हो सकता है? कामादिक शत्रुओं पर कैसे विजय पाई जा सकती है ?

उत्तर: गुरू ही ज्ञान प्राप्ति का साधन है । गुरू के सम्मुख हो कर मनुष्य ज्यों-ज्यों गुर-शबद में जुड़ता है, इसकी समझ(मति) ऊंची होती जाती है, इस को अपनी आत्मा की समझ आजाती है और कामादिक संसार के विकारों से बच कर जीने की शैली उसे आ जाती है ।

प्रश्न: मनुष्य किसके आश्रय जीता रह सकता है ? किस की शिक्षा पर चल कर मनुष्य दुनियां में रहते हुए भी माया के मोह से बचा रह सकता है ?

उत्तर: जीवन श्वासों के आश्रय टिका रहता है । यदि मनुष्य सतगुरू के शबद में अपनी सुरति जोड़े रखे, परमात्मा के गुण याद रखता रहे, तो माया के मोह से बचा रहता है, क्योंकि गुर-शबद की कृपा द्वारा ही मनुष्य का अहं समाप्त हो जाता है ।

प्रश्न: मोम के दांतों से लोहा कैसे चबाया जाए ? बर्फ के घर के आसपास यदि अग्नि का चोला पहना हो तो कौन-सी गुफा का प्रयोग करें, जहां वह पिघल न जाए ?

उत्तर: ईश्वरीय कोमलता व शांति बर्फ के समान है । इसको तृष्णा की अग्नि से बचाने का एकाएक तरीका है कि मनुष्य गुरू की इच्छा में चले और हर स्थान पर एक परमात्मा को ही देखे । गुरू की इच्छा में रहना एक ऐसी गुफा है जहां तृष्णा की ज्वाला, आंतरिक आत्मिक शांति को मिटा नहीं सकती । गुरू के शबद में मन जोड़ कर, अहं को त्यागना, मन में नम्रता, प्यार पैदा करना - यही है मोम के दांतों से लोहे को चबाना ।

प्रश्न: वह कौन सा साधन है जिस से बर्फ का घर, चंद्रमा(शांति) अपना प्रभाव बनाए रखें ? किस तरह सूर्य तपा रहे? मृत्यु का सहम कैसे दूर हो ?

उत्तर :ज्यों-ज्यों मनुष्य गुरू के शबद को अपने मन में टिकाता है, इसके अंदर शांति पैदा होती है और शांत हृदय में ज्ञान का सूर्य चढ़ने से मनुष्य के अंदर से अज्ञानता का अंध कार दूर हो जाता है ।

गुरू के शबद की कृपा द्वारा जब मनुष्य प्रभु की याद को जीवन का आश्रय बनाता

है, तो प्रभु इसको *दुत्तर सागर* से पार लगा देता है । सतगुरू के शबद द्वारा गहरी निकटता बनाने मे, मन हर समय प्रभु-चरणों में लीन रहने के कारण मृत्यु का सहम होता ही नहीं ।

**प्रश्न:** प्राणी दुरमति के कारण इज्जत व विश्वास गंवा बैठता है और हर समय सहमा रहता है । इस दुरमत से छुटकारा कैसे प्राप्त हो ?

**उत्तर:** गुरू की शरण में आने से और गुरू के शबद की विचार करने से दुरमति से छुटकारा मिल जाता है । गुरू की मति लेने वाला मनुष्य विकारों में ग्रसित होने की जगह प्रभु का नाम धन कमा कर जहां स्वय*दुत्तर सागर* पार हो जाता है, वहीं दूसरों को भी इस रास्ते की सूझ-बूझ देता है। उसको हर दिशा में प्रभु-ही-प्रभु व्यापक दिखलाई देता है ।

**प्रश्न:** जिस शबद के बारेमें आप कहते हैं कि उसके द्वारा संसार-समुद्र पार किया जा सकता है, उस शबद का निवास कहां पर है ?

यह श्वास, जो बाहर निकालने पर हवा दस उंगली के फासले तक बाहर जाती है, यह दस उंगली प्रमाण किसके आसरे है ?

**उत्तर:** परमात्मा और परमात्मा का स्तुति-गायन का शबद एक रूप हैं । मैं जहां भी देखता हूं, हर ओर शबद ही शबद है । जिस मनुष्य पर प्रभु स्वयं कृपा दृष्टि करते हैं, उसके हृदय में यह शबद बस जाता है । जो मनुष्य इस शबद को पहचान लेता है, उस पर माया व धन दौलत का प्रभाव नहीं पड़ सकता, उस के मन में से तेरा-मेरा की भावना मिट जाती है ।

यह स्तुति-गायन का शबद अथवा प्रभु का नाम ही गुरमुख के श्वासों का आसरा है । गुरमुख श्वास-श्वास प्रभु को याद रखता है । गुरमुख मनुष्य को प्रभु अपने स्वरूप की समझ प्रदान करता है । गुरमुख को इस बात की समझ पड़ जाती है कि प्रभु का मिलाप प्राणायाम (इड़ा, पिंगला, सुखमना के अभ्यास) से ऊपर है । प्रभु में केवल गुरू के शबद द्वारा ही लीन हुआ जा सकता है ।

**प्रश्न:** प्राणों का आसरा क्या है ? और ज्ञान की प्राप्ति का साधन कौन सा है ?

**उत्तर:** सतिगुरू का शबद ही गुरमुखों के प्राणों का आसरा है । ज्ञान की प्राप्ति का साधन केवल गुरू का शबद ही है । जिसको यह निधि प्राप्त होती है, उसकी तृष्णा की आग बुझ जाती है, उसको आत्मिक सुख की प्राप्ति हो जाती है।

**प्रश्न:** वह कौन सी मति है जिस के द्वारा मन सदा टिका रह सकता है ?

**उत्तर:** गुरू से जो मति मिलती हे, उस से मन अडोल हो जाता है और दुख-सुख का मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है ।

प्रश्न: जिस शबद के द्वारा आपके मतानुसार मन की भटकन मिट जाती है, उस शबद का निवास कहां है ?

उत्तर: जब प्रभु कृपादृष्टि करता है तो मनुष्य गुरू के आदेश में चलता है और यह मन अडोल हो कर अंदर ही टिक जाता है । प्राणों का स्तंभ नाभि है । *दुत्तर-सागर* से पार होने वाला शबद सुन्न प्रभु में टिकता है, भाव शबद और प्रभु में कोई भेद नहीं है ।

प्रश्न: जब न यह हृदय था और न यह शरीर थे, तब चेतन सत्ता का टिकाना कहां था ? जब नाभि का चक्कर नहीं था, तब श्वास कहां टिका करते थे ? जब कोई रूप-रेखा नहीं थी, तब शबद का टिकाना कहां था? जब यह शरीर नहीं था, तब मन प्रभु में कैसे जुड़ता था ?

उत्तर: जब हृदय और शरीर नहीं थे, तब वैरागी मन निर्गुण प्रभु में लीन था। जब नाभि चक्कर का स्तंभ नहीं था, तब प्राण भी प्रभु में टिके हुए थे । जब संसार का कोई रूप-रेख नहीं था, तब *दुत्तर सागर* से पार होने वाला शबद भी प्रभु में ही लीन था, क्योंकि जब संसार की हस्ती नहीं थी, तब आकार-रहित तृभवणी ज्योति स्वयं ही थी ।

प्रश्न: यह संसार पैदा क्यों होता है और दुखी क्यों होता है ?

उत्तर: संसार अहं में पैदा होता है(भाव, जीव का अहं के कारण आवागवन का चक्कर चलता रहता है) । यदि इस को प्रभु भूल जाए तो यह दुख पाता है । जो मनुष्य गुरू के शबद के द्वारा अहं (स्वार्थ) को जलाता है, वह सदा कायम रहने वाले परमात्मा में टिका रहता है ।

प्रश्नों का उत्तर देने के अतिरिक्त भी गुरू नानक देव जी ने योगियों को गुरमत के कुछ अंगों - गुरशबद की कमाई की बरकतें, गुरमुख की उच्च आत्मिक अवस्था, मनमुख की दुर्दशा, नाम सुमिरन के लाभ और गुरू के आदेश में चलने के लाभ - आदि के बारे में भरपूर जानकारी दी थी और अंततः सारी विचार(सिध गोसटि) का तत्व बताते हुए कहा था कि प्रभु की याद के बिना योग(प्रभु के संग मिलाप) संभव नहीं है और प्रभु के नाम की प्राप्ति सतगुरू से ही होती है ।

***सिध गोसटि*** की अंतिम पउड़ी में प्रभु के सम्मुख प्रार्थना की गई है कि हे प्रभु! इस बात को तूं स्वयं ही जानता है कि तूं कैसा है और कितना बड़ा है । जिन को तूं बंदगी की निधि प्रदान करता है, वे तेरे दर्शन से बलि-बलि जाते हैं । तूं स्वयं ही इस रचना के खेल का रचयिता है ।

*

## (7) ग्रहस्थ : गुरमति व योगमत

प्राचीन भारतीय विचारधारा के अनुसार संसार में हर दिशा में माया का बोलबाला है - घर-बार, धन-संपत्ति, स्त्री, संतान माया का ही रूप हैं । यह *मैं-मेरी* की भावना पैदा करते हैं, जिसको धार्मिक भाषा में माया कहा गया है । संसार में रहते हुए मनुष्य धन-संपत्ति एकत्र करने में ही समय व्यर्थ कर देता है । पत्नी, बाल-बच्चों व धन का मोह उस को विकारी बना देता है और मनुष्य विकारों में फंसा हुआ प्रभु को भूल ही जाता है । इसलिए प्राचीन समय में अपने आप को *भगत* समझने वाले लोग जंगलों, पहाड़ों, कंद्राओं, नदियों के किनारों पर या *तीर्थों* पर जा कर निवास करते थे और *भक्ति* करते थे ।

योग-मत वाले भी उपरोक्त विचारधारा के धारणकर्ता थे । आबादी से दूर रहना, प्राणायाम की क्रियाएं, आसन साधने और ध्यान जमाने आदि में शायद सहायक भी होती थीं । वैसे घर-बार छोड़ने से गृहस्थ की जिम्मेवारियों से छुटकारा भी मिल जाता था और योगी व अन्य साधक चिंता-मुक्त हो कर अपने जीवन-दर्शन के अनुसार जंगलों व पहाड़ों में जीवन व्यतीत करते थे । पर यह रास्ता कुछ चुनींदा लोग ही अपना सकते थे, क्योंकि सारे मनुष्य तो जंगलों-पहाड़ों में रह नहीं सकते थे और न ही कठिन साधना साध सकते थे । दूसरे शब्दों में, सारे लोग *धर्मात्मा* नहीं कहला सकते ।

जंगलों, पहाड़ों व कंद्राओं आदि में रहने वाले भी स्वार्थी हो जाते हैं। उन को निजी शांति व सुख की ही चिंता थी । संसार में आम लोगों पर चाहे मुसीबतों के पहाड़ टूट पड़ें, अत्याचार होते रहें, इन को कोई अंतर नहीं पड़ता था ।

फिर स्वाभाविक ही ऐसे लोगों के मनों में आम संसारियों से *उच्च* होने का अहसास पैदा हो जाता था और ये घर-बारी लोगों को *नीच दर्जे* के मनुष्य समझते थे । अत: इन के मन में, बल्कि ग्रहस्थियों से अधिक अहं पैदा हो जाता था । आश्चर्य वाली बात यह कि जिन संसारियों/गृहस्थियों की ये निंदा करते थे, उन्हीं के घरों से ही अन्न-वस्त्र आदि की पूर्ति किया करते थे।

गुरू नानक देव जी ने धर्म की परिभाषा ही बदल दी । उन्होंने नाम का जाप करने(प्रभु का स्तुति-गायन करने), परिश्रम द्वारा धन अर्जन करने और मिल-बांट कर खाने को धर्म का जरूरी अंग बना दिया । यथा:

घालि खाइ किछु हथहु देइ ।। नानक राहु पछाणहि सेइ ।।

(सारंग की वार, सलोक, महला १, पृ १२४५)

यह धर्म तो संसार में रह कर ही *कमाया* जा सकता था । गुरू जी ने माया से डरने की नहीं, बल्कि माया से टक्कर लेने की राह दिखलाई । आपने संघर्षवादी होने का उपदेश दिया । आपने समझाया कि माया में विचरण करो, पर माया से वैसे ही निर्लिप्त हो कर रहो, जैसे मुर्गाबी पानी में रहती है पर अपने पंखों पर पानी का असर नहीं होने देती और जैसे कंवल फूल कीचड़ में पैदा होता है, पर कीचड़ से ऊपर रहता है । सिद्धों से चर्चा के समय ही आपने वचन किया था :

जैसे जल महि कमलु निरालमु, मुरगाई नै साणे ।।
सुरति सबदि भव सागरु तरीऐ, नानक नामु वखाणे ।।

संसार में रहते हुए अपनी सुरति(ध्यान) को गुरू के शबद में केंद्रित रखना है, गुरू के उपदेशों को मन में बसा कर उन के अनुसार जीवन व्यतीत करना है । इस प्रकार माया से निर्लिप्त रहा जा सकता है ।

योगियों को गुरू जी ने यह बात समझाई थी कि आबादी से दूर मढ़ी-मसाणों में रहने, समाधियां लगाने व तीर्थों पर भ्रमण करते रहने से प्रभु से मिलाप नहीं हो सकता, प्रभु में लीनता नहीं हो सकती । माया की कालिख(अंजन) में, माया के प्रभाव से बच कर, प्रभु से जुड़े रहने से ही परमात्मा से मेल हो सकता है । यथा :

जोगु न बाहरि मढ़ी मसाणी, जोगु न ताड़ी लाईऐ ।।
जोगु न देसि दिसंतरि भविऐ,जोगु न तीरथि नाईऐ ।।
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ, जोग जुगति इव पाईऐ ।।२।।

(सूही, महला १, पृ ७३०)

अत: गुरमति और योग-मत में यह एक बड़ा अंतर है कि जहां योग मत घर-बार छोड़ने पर बल देता है, वहीं सिख धर्म ग्रहस्थ में रह कर माया से निर्लिप्त रहने की शिक्षा देता है ।

## (४) टीका (सरलार्थ)
## *सिध गोसटि*

**रामकली, महला १, सिध गोसटि**

**पद अर्थ : सिध - पहुंचा हुआ योगी । गोसटि- चर्चा, बहस, बातचीत, गोष्ठि ।**

*सिध* यानी *सिद्ध* शब्द का दूसरा अर्थ परमात्मा भी है, जैसे :

सिध साधिक जोगी अरु जंगम, एकु सिधु जिनी धिआइआ ।।
परसत पैर सिझत ते सुआमी, अखरु जिन कउ आइआ ।।२।।६।

(रामकली, महला १, पृ ८७८)

उपरोक्त पंक्ति में पहले शब्द *सिध* अर्थात *सिद्ध* का अर्थ है *पहुंचे हुए योगी* । दूसरे शब्द *सिधु* का अर्थ है *परमात्मा । शब्द* गोसटि *का भी दूसरा अर्थ है* मेल, संबंध । अत: इस प्रकार *सिध गोसटि* के दो अर्थ हैं:

(1) सिद्धों से बातचीत ।

(2) परमात्मा से मिलाप ।

यह बाणी रामकली राग में श्री गुरू नानक देव जी की उच्चारण की गई है । इस में उस *चर्चा* का वर्णन है जो गुरू नानक देव जी की सिद्धों से हुई थी । उस चर्चा का विषय था *परमात्मा के संग मिलाप ।*

१ਓ ( इकओऽअंकार) सतिगुर प्रसादि ।।

सिध सभा करि आसणि बैठे, संत सभा जैकारो ।।
तिसु आगै रहरासि हमारी, साचा अपर अपारो ।।
मसतकु काटि धरी तिसु आगै, तनु मनु आगै देउ ।।
नानक संतु मिलै सचु पाईऐ, सहज भाइ जसु लेउ ।।१।।

उच्चारण: धरीं, देउं, का पाठ बिंदी ( ं ) सहित करना है ।

पद अर्थ : सिध - सिध की, परमात्मा की । सिध सभा - ईश्वरीय मजलिस, वह समूह जहां ईश्वर की बातें हो रही हों । करि - बना कर । आसणि - आसन पर, (भाव) अडोल । रहरासि- अरदास, प्रार्थना । मसतकु -माथा, सिर। धरी- मैं रखूं । सहज भाइ - आसानी से ही । जसु लेउ- यश गाऊं, प्रभु के गुण गाऊं ।

नोट: शब्द *सिध* का अर्थ *परमात्मा* किया गया है । इसी बाणी की पउड़ी नंबर 33 में *सिध* शब्द आया है, उसका अर्थ भी परमात्मा है ।

नाम रते सिध गोसटि होइ ।।

नामि रते सदा तपु होइ ।।

सिध गोसटि - प्रभु के संग मिलाप ।

*सिध गोसटि* की बाणी के आरंभ में यह पहली पउड़ी *मंगला-चरण* के तौर पर है जो बीच में ही *मनोरथ* भी प्रकट करती है । मंगलाचरण है *संत सभा* की स्तुति । मनोरथ है *सच पाईऐ ।*

अर्थ : हमारी नमस्कार उन संतों की सभा को है जो *रब्बी मजलिस*(सतसंग) बना कर अडोल बैठे हैं: हमारी प्रार्थना अथवा अरदास उस संत-सभा के आगे है जिसमें सदा कायम रहने वाला अपर-अपार प्रभु बसता है । मैं उस संत सभा के सम्मुख सिर काट कर रख दूं, तन और मन भेंट कर दूं ताकि आसानी से प्रभु का गुण गायन कर सकूं । हे नानक! संत मिल गए तो ईश्वर मिल जाता है ।।१।।

किआ भवीऐ, सचि सूचा होइ ।।

साच सबद बिनु, मुकति न कोइ ।।१।।रहाउ।।

पद अर्थ: किआ भवीऐ - भटकने का क्या लाभ ? देश-देशांतरों और तीर्थों पर भटकने का क्या लाभ ? सचि - *सच* में, सदा कायम रहने वाले प्रभु में जुड़ने से । रहाउ-ठहर जाओ(भाव) इस सारी लंबी बाणी का *मुख भाव* इन पंक्तियों में है ।

अर्थ : (हे चरपट!) देश-देशांतरों और तीर्थों पर भटकने का क्या लाभ? सदा कायम रहने वाले प्रभु में जुड़ने से ही पवित्र हुआ जा सकता है । सतगुरू के सच्चे शबद के बिना विकारों से मुक्ति नहीं होती है ।। १।।रहाउ।।

कवन तुमे, किआ नाउ तुमारा, कउनु मारगु, कउनु सुआओ ।।
साचु कहउ, अरदासि हमारी, हउ संत जना बलि जाओ ।।
कह बैसहु, कह रहीऐ बाले, कह आवहु, कह जाहो ।।
नानकु बोलै, सुणि बैरागी, किआ तुमारा राहो ।।२।।

उच्चारण: *नाउं, कहउं, हउं, जाओं,* का उच्चारण बिंदी( ं ) सहित करना है । *कह* को *कहिं* और *आवहु* को *आवो* उच्चारित करना है ।

पद अर्थ : मारगु - रास्ता, पंथ, मत । सुआओ -मनोरथ, प्रयोजन । कहउ - मैं कहता हूं, मैं जाप करता हूं । हउ- मैं । कह - कहां ? किस के आश्रय ? बैसहु - आप बैठते हो, शांत-चित्त होते हो । बाले - हे बालक! नानकु बोलै - नानक कहता है (कि जोगी ने पूछा) । बैरागी - हे बैरागी, हे वैराग्यवान, हे

संत जी ! साचु - सदा कायम रहने वाला प्रभु । राहो - राह, मत, मार्ग ।

अर्थ : चरपट जोगी ने पूछा - आप कौन हो? आपका क्या नाम है ? आप किस मत के अवलंबी हैं? (उस मत का) मनोरथ क्या है?

गुरू नानक देव जी का उत्तर : मैं सदा कायम रहने वाले प्रभु का जाप करता हूं । हमारी (प्रभु के आगे ही सदा) प्रार्थना है और मैं संत जनों से बलि-बलि जाता हूं । बस! यही मेरा मत है ।

नानक कहता है - चरपट ने पूछा : हे बालक! आप किस के आसरे शांत-चित्त हो ? आपकी सुरति किस में जुड़ती है? कहां आते हो? कहां जाते हो ? हे संत! सुनो, तेरा क्या मत है ? ।।२।।

घटि घटि बैसि, निरंतरि रहीऐ, चालहि सतिगुर भाए ।।
सहजे आए, हुकमि सिधाए, नानक सदा रजाइ ।।
आसणि बैसणि थिरु नाराइणु, ऐसी गुरमति पाए ।।
गुरमुखि बूझै, आपु पछाणै, सचे सचि समाए ।।३।।

उच्चारण : चालहिं का पाठ बिंदी ( ं ) सहित करना है और *रजाइ* का उच्चारण ज के पैर में बिंदी लगा कर रज़ाइ करना है और *चालहि* को *चालैं* पढ़ना है ।

पद अर्थ: घटि - हृदय में, शरीर में । घटि घटि - प्रत्येक शरीर में, भाव घटि-घटि में, व्यापक प्रभु की याद में । बैसि- बैठ कर, टिक कर । निरंतरि - एकरस, सदा। रहीऐ -रहते हैं, सुरति जुड़ती है । भाए- भय में, मर्जी में । सहजे - स्वयं ही। हुकमि - आदेश में । सिधाए- फिरते हैं । रजाए – ईश्वरेच्छा में । आसणि - आसन वाला । बैसणि - बैठने वाला । थिरु- कायम रहने वाला । बूझै- समझ वाला बनता है, ज्ञानवान होता है । आपु- अपने आप को ।

नोट: पउड़ी नंबर 3, पउड़ी नंबर 2 की अंतिम पक्तियों का उत्तर है ।

अर्थ : गुरू जी का उत्तर : हे चरपट! सर्वव्यापक प्रभु की याद में जुड़ कर सदा शांत-चित्त रहते हैं । हम सतगुरू की इच्छा में चलते हैं। हे नानक ! हम प्रभु के आदेश में स्वत: ही संसार में आए हैं, आदेश में ही विचरण कर रहे हैं, सदा उस की इच्छा में ही रहते हैं । पक्के आसन वाला, सदा टिके रहने वाला और कायम रहने वाला प्रभु स्वयं ही है, हमने तो यही गुरू की शिक्षा ग्रहण की है । गुरू के बताए रास्ते पर चलने वाला मनुष्य ज्ञानवान हो जाता है, अपने आप को पहचानता है, और सदा सच्चे प्रभु में लीन रहता है ।।३।।

दुनीआ सागरु दुतरु कहीअै, किउकरि पाईअै पारो ।।
चरपटु बोलै अउधू नानक, देहु सचा बीचारो ।।
आपे आखै आपे समझै, तिसु किआ उतरु दीजै ।।
साचु कहहु, तुम पारगरामी, तुझु किआ बैसणु दीजै ।।४।।

उच्चारण : (1) दुनिआं, किउंकर का उच्चारण बिंदी सहित ( ं ) करना है ।

(2) *देहु* को *देहो* पढ़ना अशुद्ध है । ठीक उच्चारण *देह है* ।

(3) *कहहु* का उच्चारण *कहो* करना है ।

(4) *दुतरु (ਦੁਤਰੁ)* का उच्चारण पंजाबी में ਦੁੱਤਰ (अद्धक अथवा ॲपव लगाकर तथा हिंदी में *दुत्तर* (आद्याक्षर लगाकर) करना है । इसी प्रकार *उतरु* (*ਉਤਰੁ* का उच्चारण *ਉੱਤਰ* (अद्धक अथवा ॲपव लगाकर तथा हिंदी में *उत्तर* (आद्याक्षर लगाकर) करना है ।

पद अर्थ : दुतरु - जिसका तैरना कठिन हो । किउकरि - किस तरह? पारो - दूसरे पार का किनारा । नानक - हे नानक! अउधू - विरक्त , योगी । साचु कहहु - सदा कायम रहने वाले प्रभु का जाप करो । पारगरामी - संसार-समुंद्र में से पार होने वाला । बैसणु - (सं: वयसन) दोश, नुक्स ।

अर्थ : चरपट योगी कहता है (भाव चरपट योगी ने कहा): संसार एक ऐसा समुद्र माना जाता है जिस को तैर कर पार करना कठिन है । हे विरक्त नानक! ठीक विचार बताओ कि इस समुद्र का परला छोर कैसे ढूंढें ?

उत्तर: जो मनुष्य, जो कुछ स्वयं कहता है और स्वयं ही उसको समझता है, उसको उत्तर देने की जरूरत नहीं होती, इसीलिए, हे चरपट! तेरे प्रश्न में कोई दोश ढूंढने की जरूरत नहीं । वैसे उत्तर यह है कि सदा कायम रहने वाले परमात्मा का नाम जपो तो तुम इस *दुत्तर सागर* यानी कठिन सागर में से पार हो जाओगे ।।४।।

जैसे जल महि कमलु निरालमु, मुरगाई नै साणे ।।
सुरति सबदि भवसागरु तरीअै, नानक नामु वखाणे ।।
रहहि इकांति, एको मनि वसिआ, आसा माहि निरासो ।।
अगमु अगोचरु देखि दिखाए, नानकु ताका दासो ।।५।।

उच्चारण: (1) *महि ਮਹਿ,* तथा *रहहि ਰਹਹਿ* का पाठ बिंदी ( ं ) सहित, *महिं ਮਹਿਂ* तथा *रहहिं ਰਹਹਿਂ* करना है ।

(2) *नै साणे* ਨੈ ਸਾਣੇ (द्वि-शब्द) को *नैसाणे* ਨੈਸਾਣੇ (एक शब्द) पढ़ना अशुद्ध है। *नै* तथा *साणे* का उच्चारण अलग-अलग करना है ।

(3) *अगमु* *ਅਗਮੁ* को *अगंम* *ਅਗੰਮ* पढ़ना है ।

पद अर्थ : निरालमु - निराला, भिन्न । नै - नई, नदी में । साणे - जैसे। सबदि - शबद में । वखाणे - जाप करके । अगम - अ + गम (जिस तक पहुंचा न जा सके (गम - जाना) । अगोचर - जिस तक ज्ञानेंद्रियों की पहुंच न हो सके।

नोट: दूसरी और चौथी पंक्ति के शब्द *नानक* और *नानकु* के अंतर को पाठकजन याद रखें । *नानक* का अर्थ है - हे नानक! और *नानकु* का अर्थ है -(गुरू) नानक ।

अर्थ: जैसे पानी में उगा हुआ कंवल का फूल पानी से निर्लिप्त रहता है, जैसे नदी में तैरती हुए मुर्गाबी के पंख पानी से नहीं भीगते, इसी प्रकार हे नानक! गुरू के शबद में सुरति जोड़ कर नाम का जाप करने से (पंचविकारी कीचड़ से भरे ) संसार समुंद्र को बेदाग पार किया जा सकता है ।

जो मनुष्य संसार की आशाओं-आकांक्षाओं से निराश रहते हैं, जिन के मन में एक प्रभु ही बसता है, वे संसार में रहते हुए भी संसार से उपराम, निर्लिप्त होकर एकांत में बसते हैं । ऐसे जीवन वाला जो मनुष्य अगम्य व अगोचर प्रभु का दर्शन करके दूसरों को दर्शन करवाता है, नानक उसका दास है ।।५।।

सुणि सुआमी अरदासि हमारी, पूछउ साचु बीचारो ।।
रोसु न कीजै, उतरु दीजै, किउ पाईऐ गुर दुआरो ।।
इहु मनु चलतउ सच घरि बैसै, नानक नामु अधारो ।।
आपे मेलि मिलाए करता, लागै साचि पिआरो ।।६।।

उच्चारण: (1) *पूछउ* *ਪੁਛਉ*, *किउ* *ਕਿਉ* का उच्चारण बिंदी सहित *पूछउं* *ਪੁਛਉਂ* व *किउं* *ਕਿਉਂ* करना है ।

(2) *बैसै* को बैसे पढ़ना अशुद्ध है ।

पद अर्थ : साचु - सही, ठीक । रोसु - गुस्सा । गुर दुआरो - गुरू का दर । चलतउ - चंचल । सच घरि - सच्चे के घर में, सदा कायम रहने वाले प्रभु की याद में । अधारो - आश्रय । साचि - सच्चे प्रभु में ।

अर्थ : चरपट का प्रश्न - हे स्वामी ! मेरी विनती सुन, मैं सही विचार पूछता हूं, गुस्सा नहीं करना, उत्तर देना कि गुरू का दर कैसे प्राप्त होता है?

भाव, कैसे पता चले कि गुरू का दर प्राप्त हो गया है ?

उत्तर: जब सचमुच गुरू का दर प्राप्त हो जाता है तब हे नानक! यह चंचल मन प्रभु की याद में जुड़ा रहता है, प्रभु का नाम जीवन का आश्रय हो जाता है । सच्चे प्रभु में स्नेह तभी जागृत होता है जब करतार स्वयं जीव को अपनी याद में जोड़ लेता है ।।६।।

हाटी बाटी रहहि निराले, रूखि बिरखि उदिआने ।।
कंद मूलु अहारो खाईऐ, अउधू बोलै गिआने ।।
तीरथि नाईऐ, सुखु फलु पाईऐ, मैलु न लागै काई ।।
गोरख पूतु लोहारीपा बोलै, जोग जुगति बिधि साई ।।७।।

उच्चारण :(1) *हाटी ਹਾਟੀ बाटी ਬਾਟੀ* को बिंदी ( ˙ ) लगाकर *हाटीं ਹਾਟੀਂ बाटीं ਬਾਟੀਂ* उच्चारण करना है ।

(2) *रहहि ਰਹਹਿ* को बिंदी ( ˙ ) लगाकर उच्चारण हेतु *रहहिं ਰਹਹਿੰ* करना है और फिर *रहैं ਰਹੈਂ* करके पढ़ना है ।

पद अर्थ : हाटी - मेला, मंडी, दुकान । बाटीं - राहों में । हाटीं बाटीं- दुनियां के झमेलों से (दूर) । रूखि - पेड़ के नीचे । बिरखि - वृक्ष के नीचे। उदिआने- जंगल में । कंद - भूमिगत, धरती के अंदर उगने वाली गाजर-मूली जैसी सब्जियां । कंद मूल - मूली । अहारो - खुराक । अउधू - विरक्त, योगी। तीरथि - तीर्थ पर । गोरख पूतु - गोरखनाथ का चेला । साई - यही ।

अर्थ : जोगी ने अपना ज्ञान-मार्ग इस प्रकार बताया: हम दुनियां के मेलों, यानी सांसारिक झमेलों से दूर जंगल में किसी वृक्ष के नीचे रहते हैं और गाजर-मूली, फलाहार पर गुजारा करते हैं, तीर्थ पर स्नान करते हैं, इस का फल मिलता है *सुख* और मन को कोई मैल नहीं लगती । गोरखनाथ का चेला लोहारीपा बोला कि यही है योग की युक्ति, योग की विधि ।।७।।

हाटी बाटी नीद न आवै, पर घरि चितु न डुोलाई ।।
बिनु नावै मनु टेक न टिकई, नानक भूख न जाई ।।
हाटु पटणु घरु गुरू दिखाइआ, सहजे सचु वापारो ।।
खंडित निद्रा, अलप अहारं, नानक ततु बीचारो ।।८।।

उच्चारण : (1) *नीद, निद्रा* आदि शब्दों का उच्चारण बिंदी( ˙ ) सहित *नींद, निंद्रा*

करना है ।

(2) *वापारो* को *वपारो* पढ़ना अशुद्ध है ।

(3) *डोलाई* में ड अक्षर को ( ो ) की मात्र व ( ु ) की दो मात्रएं लगी हैं । इस शब्द में असली क्रियाशील मात्रा ( ो) है । पर यहां पर छंद की चाल को पूरा रखने के लिए ( ु ) की मात्रा को पढ़ना है । अर्थात् इस शब्द को *डुलाई* पढ़ना है ।

पद अर्थ : भूखा- तृष्णा, लालच । हाटु - (असली व्यापार) भाव, प्रभु के नाम का आध्यात्मिक व्यापार । पटणु - शहर । सहजे - सहज अवस्था में टिक कर, अडोल रह कर । खांडित - घटाई हुई । अलप - थोड़ा ।

अर्थ : हे नानक ! असल ज्ञान की विचार यह है कि दुनियां के काम-धंधों में रहते हुए मनुष्य को नींद न आए, भाव धंधों में ही वह व्यसित होकर ग़र्क हो जाए, पराए घर में मन को डोलने न दे, पर हे नानक! प्रभु के नाम के बिना मन टिक कर नहीं रह सकता और माया की तृष्णा मिटती नहीं ।

जिस मनुष्य को सतगुरू के नाम के व्यापार का असल टिकाना, शहर, घर दिखला दिया है, वह दुनियां के काम-धंधों में भी अडोल रह कर *नाम का व्यापार* करता है । उस मनुष्य की नींद और खुराक भी कम हो जाती है । भाव वह रसास्वादन व चस्कों में नहीं पड़ता ।।८।।

दरसनु भेखा करहु जोगिंद्रा, मुंद्रा झोली खिंथा ।।
बारह अंतरि ऐकु सरेवहु, खटु दरसन इक पंथा ।।
इन बिधि मनु समझाईऐ पुरखा, बाहुड़ि चोट न खाईऐ ।।
नानकु बोलै गुरमुखि बूझै, जोग जुगति इव पाईऐ ।।९।।

उच्चारण: (1) *दरसन* का पाठ *दर्शन* और *करहु* का पाठ *करो करना है ।*

(2) *मुंद्रा* का पाठ *मुंदरां* करना है ।

पद अर्थ : दरसनु- मत । जोगिंद्रा - जोगी-राज का । मुंद्रा - योगियों के कानों में पहनने वाली मुंद्रा । खिंथा - गोदड़ी । बारह- योगियों के 12 पंथ । एकु - एक *आई पंथ*, हमारा आई पंथ । सरेवहु -धारण करो, कबूलो । खटु दरसन - छः प्रकार के वेश - जंगम, योगी, जैनी, संन्यासी, वैरागी, वैष्णव। इक पंथा - हमारा योग मत । पुरखा - हे पुरुष नानक ! गुरमुखि - गुरू के सम्मुख ।

नोट: *गुरमुख* शब्द यह दर्शाता है कि यहां पर सतगुरू जी ने उत्तर शुरू कर दिया है ।

इव - इस तरह ।

नोट: योगी यहां अपने मत की प्रशांसा करता है । पहली तीन पंक्तियों में सतगुरू जी योगी का ख्याल बताते हैं । अंतिम पंक्ति में अपना उत्तर शुरू करते हैं, जो पउड़ी नंबर 11 तक जाता है ।

अर्थ : नानक कहता है कि योगी ने कहा : हे पुरुष नानक! छ: भेखों में एक योगी पंथ है, उस के बारह संप्रदाय हैं, उन में से हमारे *आई पंथ* को धारण करो, योगियों के इस बड़े भेख का मत स्वीकार करो, मुंदा झोली व गूदड़ी पहरो । हे पुरुष! इस तरह मन को अक्ल दी जा सकती है और पुन: (माया की) चोट नहीं लगती ।

उत्तर: नानक कहता है, गुरू के सम्मुख होने से मनुष्य मन को समझाने का ढंग समझता है, योग की युक्ति इस तरह प्राप्त होती है।।९।।

अंतरि सबदु निरंतरि मुद्रा, हउमै ममता दूरि करी ।।
कामु क्रोधु अहंकारु निवारै, गुर कै सबदि सु समझ परी ।।
खिंथा झोली भरिपुरि रहिआ, नानक तारै एकु हरी ।।
साचा साहिबु, साची नाई, परखै गुर की बात खरी ।।१०।।

उच्चारण : (1) *भरपुरि* का उच्चारण *भरपूर* नहीं करना ।
(2) *समालि* का उच्चारण *समा:ल* करना है ।

पद अर्थ : अंतरि - मन के अंदर । निरंतरि - निर-अंतरि, एकरस । ममता - मेरा-पन, अपनत्व, दुनियावी पदार्थों को अपना बनाने का ख्याल । निवारै - दूर करता है । सबदि - शब्द के द्वारा । सु - अच्छी । भरिपुरि - भरपूर, सभी जगह पर मौजूद । साचा - सदा कायम रहने वाला । नाई - महानता । खरी बात - खरी बात के द्वारा, सच्चे शब्द के द्वारा ।

अर्थ : मन में सतगुरू के शबद को समरस बसाना - यह कानों में मुंद्राएं पहनने के तुल्य है ।(जो मनुष्य गुर-शबद को बसाता है वह) अपने अहं और ममता को दूर कर लेता है, काम, क्रोध और अहंकार को मिटा लेता है, गुरू के शबद के द्वारा उस को अच्छी सूझ हो जाती है । हे नानक! प्रभु को सभी जगह पर व्यापक समझना उस मनुष्य की गूदड़ी व झोली है । सतगुरू के सच्चे शबद के द्वारा वह मनुष्य यह निर्णय कर लेता है कि एक परमात्मा ही (माया की चोट) से बचाता है, जो सदा कायम रहने वाला मालिक है और जिसकी महानता-भी सदा टिके रहने वाली है।।१०।।

ऊंधउ खपरु, पंचभू टोपी ।।

काइआ कड़ासणु, मनु जागोटी ।।
सतु संतोखु संजमु है नालि ।।
नानक गुरमुखि नामु समालि ।।११।।

उच्चारण : (1) *समालि* का उच्चारण *समा:ल* करना है ।
(2) *जागोटी* शब्द का उच्चारण *जगोटी* नहीं करना है ।

पद अर्थ : ऊंधउ - उल्टा हुआ, सांसारिक इच्छाओं की ओर से मुड़ा हुआ । खपरु - योगी या भिक्षक का भिक्षा पात्र जिसमें वह भिक्षा डलवाता है । भू - तत्व । पंचभू - पांच तत्वों के उपकारी गुण(आकाश की निर्लिप्तता, अग्नि का स्वभाव मैल को जलाना, वायु की समदर्शता, जल की शीतलता, धरती का धैर्य) कड़ासणु- कट या आसन । कट -चट्टाई, फूहड़ी । जागोटी - लंगोटी । गुरमुखि - गुरू के द्वारा । समालि - संभालता है ।

अर्थ :हे नानक! जो मनुष्य गुरू के द्वारा प्रभु के नाम को याद करता है, सांसारिक इच्छाओं से मुंह मोड़े हुए सुरति उसका खप्पर अथवा दानपात्र है, पांच तत्वों के दैवी गुण उसकी टोपी हैं, शरीर को विकारों से निर्मल रखना उस का दभ का आसन है, वश में आया हुआ मन उस की लंगोटी है, सत, संतोष व संयम उसके साथ तीन चेले हैं ।।११।।

कवनु सु गुपता, कवनु सु मुकता ।।
कवनु सु अंतरि बाहरि जुगता ।।
कवनु सु आवै, कवनु सु जाइ ।।
कवनु सु, त्रिभवणि रहिआ समाइ ।।१२।।
घटि घटि गुपता, गुरमुखि मुकता ।।
अंतरि बाहरि सबदि सु जुगता ।।
मनमुखि बिनसै आवै जाइ ।।
नानक, गुरमुखि साचि समाइ ।।१३।।

उच्चारण :(1) *रहिआ* का उच्चारण *रिहा* करना गलत है ।
(2) *सबदि मखर* का उच्चारण *शबद म़घर* करना है ।

पद अर्थ : गुपता - छिपा हुआ । अंतरि - अंदर से । बाहरि - बाहर से। अंतरि बाहरि - (भव) मन और शरीर के द्वारा । जुगता - जुड़ा हुआ, मिला हुआ। आवै जाइ - जन्म-मरण में आता है । त्रिभवणि - तीनों भवनों के मालिक प्रभु में (तीन भवन - आकाश, मातलोक व पाताल लोक )। घटि घटि - प्रत्येक हृदय में । गुरमुखि - जो मनुष्य गुरु के सम्मुख है ।, जो गुरू के बताए
रास्ते पर चलता है । सबदि - शबद में जुंड़ा हुआ । बिनसै - नाश होता है । साचि

– सदा कायम रहने वाले प्रभु में ।

नोट: पउड़ी नंबर 11 तक चरपट व लोहारीपा योगी के प्रश्न समाप्त हो चुके हैं । अब आगे खुले प्रश्नोत्तर हैं :

अर्थ (प्रश्न): छिपा हुआ कौन है? वह कौन है जो मुक्त है? वह कौन है जो अंदर-बाहर से( भाव, जिस का मन भी और शरीर की इंद्रियां भी मिली हुई हैं) मिला हुआ है ? सदा जीवन-मृत्यु के भंवर में कौन पड़ता है । त्रिलोकी के नाथ में कौन लीन है?

उत्तर: जो प्रभु प्रत्येक शरीर में मौजूद है वह गुप्त है, गुरू की बताई राह पर चलने वाला मनुष्य माया के बंधनों से मुक्त है । जो मनुष्य गुर-शबद में जुड़ा है, वह मन व तन से प्रभु में जुड़ा हुआ है । मन के पीछे चलने वाला मनुष्य सदा जीवन-मृत्यु के भंवर में आता रहता है। हे नानक! गुरमुख मनुष्य सच्चे प्रभु में लीन रहता है ।।१३।।

किउकरि बाधा, सरपनि खाधा ।।
किउकरि खोइआ, किउकरि लाधा ।।
किउकरि निरमलु, किउकरि अंधिआरा ।।
इहु ततु बीचारै, सु गुरू हमारा ।।१४।।

उच्चारण : *किउकरि* का उच्चारण *किउंकर* करना है । बांधा का उच्चारण बिंदी सहित करना है ।

पद अर्थ : सरपनि - सर्पणी, माया । किउकरि - कैसे ?

अर्थ (प्रश्न): यह जीव ऐसे कैसे बंध पड़ा है कि माया रूपी सर्पणी इस को खाए जा रही है और यह है कि अपने बचाव में भाग भी नहीं सकता ? इस जीव ने कैसे अपने जीवन का लाभ गंवा लिया है? कैसे पुन: वह इस जीवन का लाभ उठा सके? कैसे पवित्र हो सके ? यह कैसे इस के आगे अंधकार टिका हुआ है ? जो मनुष्य इस वास्तविकता पर अच्छी तरह विचार करता है, हमारी उसको नमस्कार है ।।१४।।

दुरमति बाधा, सरपनि खाधा ।।
मनमुखि खोइआ, गुरमुखि लाधा ।।
सतिगुरु मिलै अंधेरा जाइ ।।
नानक हउमै मेटि, समाइ ।।१५।।
सुंन निरंतरि दीजै बंधु ।।

उडै न हंसा, पढ़ै न कंधु
सहज गुफा घरु जाणै साचा ।।
नानक साचे भावै साचा ।।१६।।

पद अर्थ : मेटि - मिटा कर । सुंन- (सं: शून्य) अफुर परमात्मा , निर्गुण स्वरूप प्रभु । बंधु- बांध, रोक, किनारा । उडै न - भटकता नहीं । हंसा - जीव, मन । कंधु - शरीर । न पड़ै - नहीं गिरता, फटता नहीं । सहज - आत्मिक अडोलता की दशा ।

अर्थ :(उत्तर): यह जीव दुरमति में ऐसा बंधा हुआ है कि सर्पणी माया इस को खाए जा रही है और इन चस्कों को छोड़ने का इसका जी नहीं करता है । मन के पीछे लगने वाले ने जीवन का अर्थ गंवा लिया है और गुरू के आदेश में चलने वाले ने जीवन का अर्थ कमा लिया है। माया के चस्कों का अंधकार तो ही दूर होता है यदि सतगुरू मिल जाए, भाव यदि मनुष्य गुरू के दर्शाए रास्ते पर चलने लग जाए । हे नानक! मनुष्य अहं मिटा कर ही प्रभु में लीन हो सकता है ।।१५।।

यदि समरस अफुर परमात्मा की याद का एक अटूट किनारा बना दें तो फिर माया की खातिर मन भटकेगा नहीं और शरीर भी छीझता नहीं, तार-तार नहीं होता, अर्थात शरीर की सत्ता नष्ट नहीं होती । हे नानक! जो मनुष्य सहज-अवस्था की गुफा को अपना स्थाई निवास समझ ले, भाव जिस मनुष्य का मन सदा अडोल रहे, वह परमात्मा का रूप हो कर उस प्रभु को प्यारा लगने लग जाता है ।।१६।।

किसु कारणि, ग्रिहु तजिओ उदासी ।।
किसु कारणि, इहु भेखु निवासी ।।
किसु वखर के तुम वणजारे ।।
किउकरि साथु लंघावहु पारे ।।१७।।

उच्चारण : *ग्रिहु* तथा इहु को *ग्रिहो* व *इहो* पढ़ना अशुद्ध है । शुद्ध पाठ *ग्रिह* अर्थात *गृह* तथा इह है । मूल पंजाबी भाष्य में छोटे उ की मात्र ( ु ) का पंजाबी पूरक औंकड़ ( _ ) एक वचन का प्रतीक है ।

पद अर्थ : किसु कारणि - किस लिए? तजिओ - त्यागा था । उदासी - विरक्त हो कर । निवासी - धारण करने वाले हुए थे । वणजारे - बनजारे, व्यापारी । साथु - काफिला । (शब्द *साथु* और *साथि* का अंतर याद रखने योग्य है। *साथु* संज्ञा है और *साथि* संबंधक और क्रिया विशेषण है )।

नोट: सिद्धों के साथ गोष्ठी बटाला(जिला गुरदासपुर) के समीप *अॅचल* में हुई थी । सतगुरू जी *शिवरात्रि* का मेला सुन कर करतारपुर से आए थे और इस समय ग्रहस्थी लिबास में थे, तभी भंगरनाथ ने पूछा था – *'भेखि उतारि उदासि दा, वत किउं संसारी रीति चलाई ॥'* इस से पूर्व दूसरी *उदासी* यानी प्रचारक दौरे के अवसर पर गुरू जी सिद्धों को सुमेर पर्वत पर मिले थे, तब वे *उदासी* पहरावे में थे ।

यहां पउड़ी नंबर 17 के प्रश्न में उस समय के उदासी पहरावे की ओर इंगित किया गया है ।

अर्थ(प्रश्न): यदि *'हाटी बाटी'* का त्याग नहीं करना, तो आपने घर क्यों छोड़ा था और *उदासी* क्यों बने थे ? क्यों यह उदासी-वेश धारण किया था ? आप किस सौदे के व्यापारी हैं ? अपने श्रद्धालुओं की श्रेणी को इस *दुत्तर 'संसार सागर'* से कैसे पार करावोगे ? भाव, अपने सिखों को इस संसार से पार लगाने के लिए आपने कौन सी राह दिखलाई है ? ॥१७॥

गुरमुखि खोजत भए उदासी॥
दरसन कै ताई भेख निवासी ॥
साच वखर के हम वणजारे ॥
नानक, गुरमुखि उतरसि पारे ॥१८॥

उच्चारण :(1) *दरसन का उच्चारण दर्शन व ताई का उच्चारण ताईं* (बिंदी सहित) करना है ।

(2) *वखर* का उच्चारण *वक्खर* (आद्याक्षर सहित) करना है।

पद अर्थ : भए - बने थे । कै ताई - की खातिर । दरसन - गुरमुखों के दर्शन।

अर्थ (उत्तर): हम गुरमुखों को ढूंढने के वास्ते उदासी बने थे, हमने गुरमुखों के दर्शनों के लिए उदासी का वेश धारण किया था । हम सच्चे प्रभु के नाम रूपी सौदे के व्यापारी हैं । हे नानक ! जो मनुष्य गुरू द्वारा दर्शाए रास्ते पर चलता है वह संसार-सागर से पार हो जाता है ॥ १८॥

कितु बिधि पुरखा, जनमु वटाइआ ॥
काहे कउ, तुझु इहु मनु लाइआ ॥
कितु बिधि, आसा मनसा खाई ॥
कितु बिधि, जोति निरंतरि पाई ॥
बिनु दंता, किउ खाईऐ सारु ॥
नानक, साचा करहु बीचारु ॥१९॥

उच्चारण: *दंता* का उच्चारण *दंतां* तथा *किउ* का उच्चारण *किउं* (बिंदी सहित) करना है ।

पद अर्थ : कितु बिधि - किस तरीके से ? जनमु वटाइआ - जीवन पलट लिया है । काहे कउ - किस के साथ? मनसा- मन का फुरना । खाई - खा ली है । जोति - ईश्वरीय प्रकाश । दंता- दांत । सारु - लोहा ।

अर्थ (प्रश्न) : हे पुरुष! तूंने अपना जीवन किस तरह से पलट लिया है? तूने अपना यह मन किस में जोड़ा है? मन की आशाओं और मन के फुरने तूने कैसे मिटा लिए हैं ? तुझे ईश्वर का समरस प्रकाश कैसे मिल गया है । माया के इस प्रभाव से बचना वैसे ही कठिन है जैसे बिना दांतों के लोहा चबाना । दांतों के बिना लोहा कैसे चबाया जाए ? हे नानक! कोई सही विचार बताओ, भाव कोई ऐसा विचार बताओ जो हमारे मन को प्रभावित कर जाए ।।१९।।

सतिगुर कै जनमे, गवनु मिटाइआ ।।
अनहति राते, इहु मनु लाइआ ।।
मनसा आसा सबदि जलाई ।।
गुरमुखि जोति निरंतरि पाई ।।
त्रैगुण मेटे, खाईऐ सारु ।।
नानक, तारे तारणहारु ।।२०।।

पद अर्थ : सतिगुर कै जनमे - सतिगुर के घर में जन्म लेने से, जब गुरू की शरण आ कर पिछला स्वभाव मिटा दिया । गवनु - भटकन, आवागवन । अनहति - समरस व्यापक प्रभु में । राते - मस्त हो कर । लाइआ - परीक्षा ली। त्रैगुण - माया के तीन गुण - तमो गुण, रजो गुण, सतो गुण, अज्ञान, प्रवृत्ति, ज्ञान।

अर्थ (उत्तर): ज्यों-ज्यों सतगुरू की शिक्षाओं पर चलें, त्यों-त्यों मन की भटकन शांत होती गई । ज्यों-ज्यों समरस व्यापक प्रभु में विलय होने का आनंद आया, त्यों-त्यों यह मन मानता गया । मन के फुरने व दुनियां वाली आशाओं को हमने गुरू के शबद के द्वारा जला दिया है । गुरू के सम्मुख होने से ही समरस ईश्वरीय प्रकाश प्राप्त हुआ है । इस ईश्वरीय प्रकाश की कृपा से हमने माया के तीनों ही प्रकार के प्रभाव (तमो, रजो, सतो) अपने ऊपर पड़ने नहीं दिए और इस तरह माया की चोट से बचने का यह अति कठिन कार्य-रूपी लोहा चबाया जा सका है। पर हे नानक! इस *दुत्तर सागर* से तैर

कर पार कराने में समर्थ प्रभु स्वयं ही पार लगाता है ।।२०।।

आदि कउ कवनु बीचारु कथीअले, सुंन कहा घर वासो ।।
गिआन की मुद्रा कवन कथीअले, घटि घटि कवन निवासो ।।
काल का ठीगा किउ जलाईअले, किउ निरभउ घरि जाईऐ ।।
सहज संतोख का आसणु जाणै, किउ छेदे बैराईऐ ।।
गुर कै सबदि हउमै बिखु मारै, ता निज घरि होवै वासो ।।
जिन रचि रचिआ तिसु सबदि पछाणै, नानकु ता का दासो ।।२१।।

पद अर्थ : आदि - मूल, आरंभ, जगत-रचना का मूल । कथीअले - कहा जाता है । सुंन - अफुर परमात्मा, निर्गुण स्वरूप प्रभु । घर वासो - टिकाना, स्थान। गिआन - परमात्मा के संग गहरी जान-पहचान । मुद्रा - जोगियों के पांच साधन: खेचरी, भूचरी, गोचरी, चाचरी व उनमनी । ठीगा - चोट । जलाईअले - जलाया जाए । घर - घर में । बैराईऐ - वैरी को । जिनि - जिस प्रभु ने ।

अर्थ (प्रश्न) आप सृष्टि के मूल के बारे में क्या विचार प्रकट करते है? तब अफुर परमात्मा का टिकाना कहां पर था ? परमात्मा के संग जान-पहचान का क्या साधन बताते हैं आप? प्रत्येक कण में किस का निवास है ? कैसे दंभ अथवा अहं रूपी शत्रु का नाश हो, जिसके कारण सहज व संतोष का आसन पहचान लिया जाए, भाव, जिस से सहज व संतोष की अवस्था प्राप्त हो सके।

उत्तर : यदि मनुष्य सतगुरू के शबद के द्वारा अहं के जहर को मिटा ले, तो निज स्वरूप में टिक जाता है । जिस प्रभु ने रचना रची है उस प्रभु को जो मनुष्य गुरू के शबद में लीन हो कर पहचानता है, नानक उसका दास है ।।२१।।

उच्चारण: *कहा* का उच्चारण *कहां, ठीगा* का उच्चारण *ठींगा, किउ* का उच्चारण *किउं ता* का उच्चारण तां बिंदी ( ं ) सहित करना है ।

कहा ते आवै, कहा इहु जावै, कहा इहु रहै समाई ।।
ऐसु सबद कउ जो अरथावै, तिसु गुर तिलु न तमाई ।।
किउ ततै अविगतै पावै,गुरमुखि लगै पिआरो ।।
आपे सुरता, आपे करता, कहु नानक बीचारो ।।
हुकमे आवै, हुकमे जावै, हुकमे रहै समाई ।।
पूरे गुर ते साचु कमावै, गति मिति सबदे पाई ।।२२।।

पद अर्थ : कहा ते - कहां से ? इहु - यह जीव । अरथावै - समझादे।

तमाई - तमा, लालच । ततु - असलीयत, जगत का मूल, प्रभु ।
अविगत - अव्यक्त, अदृष्ट प्रभु । सुरता - सुनने वाला । गति - दशा ।
मिति - माप ।

अर्थ (प्रश्न): यह जीव कहां से आता है ? कहां जाता है ? कहां टिका रहता है? भाव, जीव कैसे जीवन व्यतीत करता है? जो यह बात समझा दे, हम मानेंगे कि उस गुरू को रत्ती भर भी लोभ नहीं है । जीव संसार के मूल व अदृश्य प्रभु को कैसे मिले ? गुरू के द्वारा प्रभु के साथ इस का प्यार कैसे हो ? हे नानक! हमें उस की विचार बताओ जो स्वयं ही जीवों को पैदा करने वाला है और स्वयं ही उनकी सुनने वाला है ।

उत्तर: जीव प्रभु के आदेश में ही यहां आता है, आदेश में ही यहां से चला जाता है, जीव को आदेश में ही जीवन व्यतीत करना होता है। पूरे गुरू के द्वारा मनुष्य सच्चे प्रभु के सुमिरन की कमाई करता है । यह बात गुरू के शबद से ही प्राप्त होती है कि प्रभु कैसा है और कितना अनंत है ।।२२।।

आदि कउ बिसमादु बीचारु कथीअले,
सुंन निरंतरि वासु लीआ ।।
अकलपत मुद्रा गुर गिआनु बीचारीअले,
घटि घटि साचा सरब जीआ ।।
गुर बचनी अविगति समाईऐ,
ततु निरंजनु सहजि लहै ।।
नानक दूजी कार न करणी,
सेवै सिखु सु खोजि लहै ।।
हुकमु बिसमादु हुकमि पछाणै,
जीअ जुगति सचु जाणै सोई ।।
आपु मेटि निरालमु होवै,
अंतरि साचु, जोगी कहीऐ सोई ।।२३।।

उच्चारण :(1) *अकलपत* का उच्चारण *अ+कलपत* करना है (*अकल+पत* नहीं )।

(2) *जीआ* का उच्चारण बिंदी सहित *जीआं* करना है ।

पद अर्थ : बिसमादु - आश्चर्य । कलपत - बनाई हुई, नकली, फर्जी। अकलपत - असली । मुद्रा - साधन । अविगति - अव्यक्त हरी में, अदृश्य प्रभु में । सहजि - अडोलता में । निरालमु - निराला, निर्लिप्त ।

अर्थ: (पउड़ी नंबर 21 व 22 का उत्तर): सृष्टि के मूल का विचार तो *आश्चर्य, आश्चर्य* ही कहा जा सकता है, तब समरस अफुर परमात्मा का ही अस्तित्व था। ज्ञान का असली साधन यह समझो कि सतगुरू से मिला ज्ञान हो(भाव, ज्ञान प्राप्त करने का असली साधन सतगुरू की शरण ही है) प्रत्येक कण में, सारे जीवों में, सदा कायम रहने वाला प्रभु ही निवास करता है। अदृश्य प्रभु में, सतगुरू के शबद के द्वारा लीन होते हैं, गुर-शबद के द्वारा अडोल अवस्था में टिकने से संसार का मूल निरंजन माया से रहित प्रभु मिल जाता है। हे नानक ! निरंजन को ढूंढने के लिए गुरू के वचनों पर चलने के सिवा और कोई काम करने की जरूरत नहीं जो सिख सेवा करता है, वह खोज करके उस *निरंजन* को ढूंढ लेता है।

(प्रभु का ) आदेश मानना अचरज ख्याल है (भाव यह ख्याल कि गुरू के आदेश में चलने से *अव्यक्त* में समाहित हो जाएंगे, हैरानगी पैदा करने वाली बात है, पर) जो मनुष्य *आदेश* में चल कर *आदेश* को पहचानता है वह जीवन की सही युक्ति व *सत्य* को जान लेता है। वह *अपने आपको* मिटा कर दुनियां में रहते हुए भी दुनियां से भिन्न होता है, क्योंकि उस के हृदय में सदा रहने वाला प्रभु साक्षात है। ऐसा मनुष्य ही योगी कहलवाने के योग्य है ।।२३।।

**(इससे अगली पउड़ी नंबर 42 तक प्रश्न-उत्तर नहीं है, सतगुरू जी स्वयं ही अपने मत की व्याख्या कर रहे हैं )।**

अविगतो निरमाइलु उपजे, निरगुण ते सरगुणु थीआ ।।
सतिगुर परचै परम पदु पाईऔ, साचै सबदि समाइ लीआ ।।
एके कउ सचु एका जाणै, हउमै दूजा दूरि कीआ ।।
सो जोगी गुर सबदु पछाणै, अंतरि कमलु प्रगासु थीआ ।।
जीवतु मरै ता सभु किछु सूझै, अंतरि जाणै सरब दइआ ।।
नानक ता कउ मिलै वडाई, आपु पछाणै सरब जीआ ।।२४।।

उच्चारण : *ता* का उच्चारण *तां* तथा *जीआ* का उच्चारण *जीआं* करना है।

पद अर्थ : अविगतो - अदृष्ट से। निरमाइलु - निर्मल(प्रभु)। उपजे -प्रकट होता है। निरगुण - माया के तीन गुणों से विहीन। सरगुणु - माया के तीन गुणों सहित। परचै - पसीजने से। परम पदु - ऊंची आत्मिक अवस्था।

अर्थ :जब अदृष्य अवस्था से निर्मल प्रभु प्रकट होता है तो निरगुण रूप से सरगुण रूप बनता है(भाव, अपने अदृष्य आत्मिक स्वरूप से आकार वाला

बन कर सूक्ष्म तथा अस्थूल रूप धारण कर लेता है) तब दृष्टिमान संसार में से जिस जीव का मन सतगुरू के शबद से पसीज जाता है उस जीव को उच्च आत्मिक अवस्था प्राप्त हो जाती है तब समझो कि गुरू के शबद के द्वारा सच्चे प्रभु ने (उस को अपने में) लीन कर लिया है।

तब वह केवल एक प्रभु को ही सदा रहने वाली हस्ती जानता है, उस ने अहं और दूसरा-भाव (प्रभु के बिना किसी अन्य ऐसी हस्ती की संभावना का विचार) दूर कर लिया होता है । वही असल योगी है, वह सतगुरू के शबद को समझता है, उसके अंदर हृदय-रूपी कंवल फूल खिला होता है ।

यदि मनुष्य जीते जी ही मरता है(भाव, अहं का त्याग करता है, स्वार्थ मिटाता है) उस को जीवन के प्रत्येक पहलू की समझ आ जाती है, वह मनुष्य सारे जीवों पर दया करने का नियम अपने मन में पक्का कर लेता है । हे नानक! उसी मनुष्य को इज्जत मिलती है, वह सारे जीवों में अपने आप को देखता है(भाव, वह उसी ज्योति को सब में देखता है जो उस के अपने अंदर है )।।२४।।

साचौ उपजै, साचि समावै, साचे सूचे एक मइआ ।।
झूठे आवहि, ठवर न पावहि, दूजै आवागउणु भइआ ।।
आवागउणु मिटै गुर सबदी, आपे परखै बखसि लइआ ।।
एका बेदन दूजे बिआपी, नामु रसाइणु वीसरिआ ।।
सो बूझै जिसु आपि बुझाए, गुर कै सबदि सु मुकतु भइआ ।।
नानक तारे तारणहारा, हउमै दूजा परहरिआ ।।२५।।

उच्चारण: (1)*आवहि, पावहि,* आदि शब्दों का उच्चारण बिंदी लगाकर *आवहिं, पावहिं* करना है ।

(2) *सबदी मधदी, बखसि मधसि, सबदि मधदि,*शब्दों का उच्चारण क्योंकि पंजाबी के *स* के पैर में बिंदी लगाकर(*स़*) करना है, जिसका हिंदी रूपक *श* बन जाता है, इसलिए इन्हें ***शबदीं, बख्श*** व ***शबद*** कर के उच्चारित करना है ।

पद अर्थ : साचौ - सदा कायम रहने वाले प्रभु से । सूचे - पवित्र मनुष्य। एक मइआ - एकमेव, एकरूप । आवागउणु - जन्म-मृत्यु का चक्र । बेदन- वेदना, पीड़ा, दुख । दूजै - प्रभु के बिना अन्य प्यार के कारण । बिआपी - सता रही है । रसाइणु - (रस + अयन ) रसों का घर । परहरिआ - दूर किया ।

अर्थ : गुरमुख सच्चे प्रभु से पैदा होता है और सच्चे में लीन रहता है। प्रभु व गुरमुख एकरूप हो जाते हैं । झूठेग-भाव, नाशवान माया में लगे हुए)

व्यक्ति संसार में आते हैं, उन को मन का टिकाव नहीं प्राप्त होता, अतः इस दूसरे भाव के कारण उन का जन्म व मत्यृ का भंवर बना रहता है ।

यह जन्म-मृत्यु का भंवर सतगुरू के शबद के द्वारा प्राप्त होता है, गुरशबद में जुड़े हुए मनुष्य को प्रभु स्वयं पहचान लेता है और उस पर कृपा करता है । जिन को सारे-रसों-का-घर, प्रभु-का-नाम, भूल जाता है, उनको दूसरे-भाव में फंसने के कारण यह अहं की पीड़ा सताती है । वह मनुष्य इस बात को समझता है जिस को प्रभु स्वयं समझ प्रदान करता है, गुरू के शबद में जुड़ने के कारण वह अहं से स्वतंत्र हो जाता है । हे नानक! जिस ने अहं तथा दूसरा-भाव त्याग दिया है उस को तारनहार प्रभु तार लेता है ।।२५।।

मनमुखि भूलै जम की काणि ।।
पर घरु जोहै हाणे हाणि ।।
मनमुखि भरमि भवै बेबाणि ।।
वेमारगि मूसै मंत्रि मसाणि ।।
सबदु न चीनै, लवै कुबाणि ।।
नानक, साचि रते सुखु जाणि ।।२६।।

पद अर्थ : काणि - अधीनता, किसी की दया पर । जोहै- देखता है । हाणे हाणि - हानि ही हानि, घाटा ही घाटा । भरमि - भुलेखे में । बेबाणि - जंगल में । वेमारगि - गलत रास्ते पर । मूसै - ठगा जाता है । मंत्रि - मंत्र पढ़ने वाला। मसाणि - शमशान में । लवै - लूं लूं करता है । कुबाणि - दुर्वचन।

अर्थ: जो व्यक्ति अपने मन के पीछे लगता है वह जीवन के सही रास्ते से भटक जाता है और यम की दयनीयता के अधीन रह जाता है। वह पराए घर को देखता है और उसको इस कुकर्म में हानि ही हानि दिखलाई देती है ।

भुलेखे में पड़ा हुआ मनमुख मानो जंगल में भटक रहा है । वह कुमार्ग पर पड़ कर ऐसे ठगा जा रहा है, जैसे शमशान में मंत्र पढ़ने वाला मनुष्य दुश्कर्मों में पड़ा है ।

गुरमुखि साचे का भउ पावै ।।
गुरमुखि बाणी अघड़ु घड़ावै ।।
गुरमुखि निरमल हरि गुण गावै ।।
गुरमुखि पवित्रु परम पदु पावै ।।

गुरमुखि रोमि रोमि हरि धिआवै ।।
नानक गुरमुखि साचि समावै ।।२७।।

उच्चारण : *अघड़ु* का उच्चारण *अ + घड़* करना है ।(अग्घड़ नहीं) ।

पद अर्थ : अघड़ - जो अच्छी तरह घड़ा हुआ नहीं है, अमोड़ मन । परम पदु - सब से ऊंची अवस्था । रोमि रोमि - शरीर के प्रत्येक रोएं के बराबर, तन-मन से । साचि - सच्चे प्रभु में ।

अर्थ : जो मनुष्य सतगुरू का अनुसरण करके चलता है वह सच्चे प्रभु का डर अपने हृदय में बैठाता है, गुरू की बाणी के द्वारा अमोड़ मन को सुंदर घड़ता है । वह निर्मल परमात्मा का स्तुति-गायन करता है और इस प्रकार पवित्र तथा ऊंची आत्मिक अवस्था प्राप्त करता है ।

गुरमुख मनुष्य तन-मन से परमात्मा को याद करता है । हे नानक! गुरमुख सदा कायम रहने वाले प्रभु में लीन रहता है ।।२७।।

गुरमुखि परचै, बेद बीचारी ।।
गुरमुखि परचै, तरीअै तारी ।।
गुरमुखि परचै, सु सबदि गिआनी ।।
गुरमुखि परचै, अंतर बिधि जानी ।।
गुरमुखि पाईअै अलखु अपारु ।।
नानक, गुरमुखि मुकति दुआरु ।।२८ ।।

उच्चारण : *अलख* का उच्चारण *अलक्ख* करना है ।

पद अर्थ : परचै - परिचय, गहरी निकटता, प्यार । अंतर बिधि - अंदर की दशा । गिआनी - ज्ञानवान प्रभु के संग गहरी जान-पहचान वाला । अलखु - जिसके कोई खास चिन्ह-निशान या लक्षण नहीं । दुआरु - दरवाजा ।

अर्थ : जो मनुष्य गुरू के संग गहरा परिचय बना लेता है(जिसका सतगुरू में पूर्ण विश्वास हो जाता है) वह मानो वेदों का ज्ञाता हो गया है। भाव उस को वेदों की जरूरत नहीं रह जाती है । गुरू के संग गहरा परिचय बना लेने से संसार-समुद्र से पार हो जाया करते हैं । गुर-शबद के द्वारा परमात्मा के साथ जान-पहचान वाले हो जाते हैं और आंतरिक सूझ पैदा हो जाती है ।

गुरू के द्वारा अदृष्ट और अनंत प्रभु से मेल हो जाता है । हे नानक गुरू की कृपा द्वारा ही अहं से मुक्ति का रास्ता निकल आता है ।।२८।।

गुरमुखि अकथु कथै बीचारि ।।
गुरमुखि निबहै सपरवारि ।।
गुरमुखि जपीऐ अंतरि पिआरि ।।
गुरमुखि पाईऐ सबदि अचारि ।।
सबदि भेदि जाणै जाणाई ।।
नानक, हउमै जालि समाई ।।२९।।

उच्चारण : (1) *अकथ* का उच्चारण *अकत्थ* करके करना है ।
(2) *सपरवारि* का उच्चारण *स + परवार* करके करना है ।

पद अर्थ : अकथु- जिस के सही स्वरूप का वर्णन न किया जा सके । बीचारि - विचार के द्वारा । निबहै - वारा खाता है, पुगता है । सपरवारि - परिवार सहित, परिवार में रहते हुए । पिआरि - प्यास रे । सबदि - गुर शबद के द्वारा । अचारि - अच्छे आचरण द्वारा । भेदि - बींध कर । जाणाई - जताए, औरों को बताता है । जालि - जला कर ।

अर्थ : गुरू द्वारा बताई राह पर चलने वाला मनुष्य गुरू द्वारा दर्शाई विचार से उस प्रभु के गुण-गायन करता है जिसके सही स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता । इस प्रकार गुरमुख परिवार में रहते हुए ही जीवन की बाजी में वह निभ जाता है, उसे वारा खा जाता है ।

गुरू के सम्मुख होने से ही हृदय में प्यार से प्रभु का जाप हो सकता है, और गुर-शबद के द्वारा ऊंचा आचरण बना कर प्रभु प्राप्त होता है ।

गुरू के बताए रास्ते पर चलने वाला मनुष्य गुरू के शबद के साथ अपने मन को पिरो कर प्रभु को पहचानता है और दूसरों को पहचान करवाता है । हे नानक! गुरमुख अहं जला कर प्रभु में लीन रहता है ।।२९।।

गुरमुखि धरती साचै साजी ।।
तिस महि ओपति खपति सु बाजी ।।
गुर कै सबदि रपै रंगु लाइ ।।
साचि रतउ पति सिउ घरि जाइ ।।
साच सबद बिनु पति नही पावै ।।
नानक बिनु नावै किउ साचि समावै ।।३०।।

उच्चारण : *महि, सिउ, नही, नावै, किउ* आदि शब्दों का उच्चारण बिंदी सहित *महिं, सिउं, नहीं, नावैं, किउं* आदि करना है ।

पद अर्थ : ओपति - उत्पत्ति । खपति - नाश । बाजी - खेल । रपै - रंग जाता है । रतउ - रंगा हुआ । पति - इज्जत । रंगु - प्यार ।

अर्थ : गुरू के द्वारा समझ पड़ती है कि सच्चे प्रभु ने ही धरती बनाई है । (ब्रह्मा आदि देवताओं ने नहीं बनाई) । इस धरती में उत्पत्ति के नाश व विकास का एक खेल है । जब मनुष्य गुरू के शबद के द्वारा प्रभु के संग प्यार जोड़ कर प्रभु के रंग में रंग जाता है तो वह सच्चे में रमा हुआ सम्मान सहित अपने घर पहुंचता है, भाव प्रभु में समा जाता है।

सच्चे शबद के बिना कोई मनुष्य इज्जत हासिल नहीं कर सकता। हे नानक ! प्रभु के नाम के बिना प्रभु में मनुष्य कैसे समा सकता है? भाव - नहीं समा सकता ।।३०।।

गुरमुखि असट सिधी सभि बुधी ।।
गुरमुखि भवजलु तरीऔ सच सुधी ।।
गुरमुखि सर अपसर बिधि जाणै ।।
गुरमुखि परविरति नरविरति पछाणै ।।
गुरमुखि तारे पारि उतारे ।।
नानक गुरमुखि सबदि निसतारे ।।३१।।

उच्चारण : *असट* को *अष्ट, सिधी को सिधीं, बुधी को बुधीं* उच्चारित करना है ।

पद अर्थ : असट सिधी - आठ सिद्धियां, आठ करामाती शकितयां: (दूसरे का रूप हो जाना, देह को बड़ा कर लेना, शरीर को छोटा कर लेना, भारी हो जाना, मन-इच्छित भोग हासिल कर लेने की सामर्थ्य, दूसरों के दिल की जान लेने की शक्ति, अपनी इच्छा के अनुसार सब को प्रेरित करना और सभी को वश में कर लेना) ।

सुधी - (सं: सुधी) श्रेष्ठ मति । अपसर - बुरा समय । सर - अच्छा समय। परविरति - ग्रहण । नरविरति - त्याग ।

अर्थ : गुरू के बताए रास्ते पर चलना ही सभी आठों करामाती शक्तियों व बुद्धि की प्राप्ति है । गुरू के सम्मुख होने से संसार-समुद्र पार हो जाते हैं और सच्चे की सुंदर मति आ जाती है । गुरू के बताए रास्ते पर चलते समय मनुष्य अच्छे-बुरे समय की दशा को जान लेता है, और पहचान लेता है कि क्या छोड़ना है और क्या ग्रहण करना है । गुरमुख मनुष्य दूसरों को भी संसार-सागर से पार कराकर किनारे पर ले आता है। हे नानक ! गुरू की शिक्षाओं पर चलने वाला व्यक्ति गुरू के शब्द के द्वारा दूसरों को भी तार लेता है ।।३२।।

नामे राते, हउमै जाइ ।।
नामि रते, सचि रहे समाइ ।।
नामि रते, जोग जुगति बीचारु ।।
नामि रते, पावहि मोख्म दुआरु ।।
नामि रते, त्रिभवण सोझी होइ ।।
नानक नामि रते सदा सुख्म होइ ।।३२।।

पद अर्थ : नामे - नाम में ही । राते - रमे हुए की । रते -रंगे हुए । मोख्म - मुक्ति, खलासी, अहं से मुक्ति । त्रिभवण - त्रिलोकी की । सदा सुख्मु - सदा कायम रहने वाला सुख ।

अर्थ : प्रभु के नाम में ही रमे हुए अहं का नाश होता है । जो मनुष्य प्रभु के नाम में रंगे हुए हैं वे प्रभु में समाए रहते हैं । जो प्राणी प्रभु के नाम में रंगे हुए हैं उन को ही उचित युक्ति व सही विचार की प्राप्ति होती है । प्रभु के नाम में रमे हुए व्यक्ति ही अहं से छुटकारा पाने की राह ढूंढते हैं । नाम में रमे व्यक्तियों को त्रिलोकी की समझ आ जाती है, भाव, हर जगह पर प्रभु व्यापक नजर आता है । हे नानक ! प्रभु के नाम में रमे हुए को स्थाई सुख मिलता है ।

नामि रते सिध गोसटि होइ ।।
नामि रते सदा तपु होइ ।।
नामि रते सचु करणी सारु ।।
नामि रते गुण गिआन बीचारु ।।
बिनु नावै बोलै सभु वेकारु ।।
नानक, नामि रते तिन कउ जैकारु ।।३३।।

उच्चारण : *गोसटि* का उच्चारण पाठ *गोष्ट* और *नावै* का *नावैं* करना है।

पद अर्थ : सिध - पूर्ण परमात्मा । गोसटि - मिलाप । सिध गोसटि - परमात्मा के संग मिलाप (देखें इस बाणी के आरंभ में शब्द *सिध गोसटि* पर विचार)। सारु - श्रेष्ठ । वेकारु - व्यर्थ । तपु - (1) मन को मारने के लिए शरीर पर कष्ट सहारने का साधन ।(2) पुन्य-करम । गिआन- जान-पहचान, सांझ ।

अर्थ : प्रभु के नाम में रमे लोगों का ही प्रभु के संग मिलाप होता है । प्रभु-नाम में रंगे रहना ही सदा कायम रहने वाला पुन्य-कर्म है । नाम में विलीन होना ही सच्चा व उत्तम कर्म है । नाम में रमे रहने से ही प्रभु के गुणों से जान-पहचान होती है ।

प्रभु के नाम के बिना मनुय जो बोलता है, वह व्यर्थ है । हे नानक! जो मनुष्य नाम में रमे हुए हैं, उनको हमारी नमस्कार है ।।३३।।

पूरे गुर ते नामु पाइआ जाइ ।।
जोग जुगति सचि रहै समाइ ।।
बारह महि जोगी भरमाए, संनिआसी छिअ चारि ।।
गुर कै सबदि जो मरि जीवै, सो पाए मोख्य दुआरु ।।
बिनु सबदै सभि दूजै लागे, देखहु रिदै बीचारि ।।
नानक वडे से वडभागी, जिनी सचु रखिआ उरधारि ।।३४।।

पद अर्थ : सचि - सत्य में, सदा कायम रहने वाले प्रभु में । बारह - जोगियों के बारह पंथ । छिअ चारि - (6+4) दस संप्रदाय संन्यासियों के तीर्थ आश्रम, बन, आरंनय, गिरि, परबत, सागर, सरस्वत, भारती, पुरी । उरधारि - हृदय में धारण करके ।

अर्थ : प्रभु का नाम पूरे गुरू से मिलता है । सच्चे प्रभु में लीन रहना - यह है असल योग की युक्ति । पर योगी लोग अपने बारह संप्रदायों के विभाजन में इस मूल लक्ष्य से भटक रहे हैं और संन्यासी लोग दस संप्रदायों के भिन्न-भिन्न साधनों में भटक रहे हैं। जो मनुष्य सतगुरू के शबद के द्वारा माया की ओर से मर कर जीता है वह अहं से निजात की राह ढूंढ लेता है ।

हृदय में विचार कर देख लें । गुरू के शबद में जुड़े बिना सारे लोग प्रभु को छोड़ कर अन्य कामों में लगे रहते हैं । हे नानक ! वह मनुष्य बड़े हैं और बड़े भाग्यशाली हैं जिन्होंने सच्चे प्रभु को अपने हृदय में टिका कर रखा हुआ है ।।३४।।

गुरमुखि रतनु लहै लिव लाइ ।।
गुरमुखि परखै रतनु सुभाइ ।।
गुरमुखि साची कार कमाइ ।।
गुरमुखि साचे मनु पतीआए ।।
गुरमुखि अलखु लखाए तिसु भावै ।।
नानक गुरमुखि चोट ना खावै ।।३५।।

पद अर्थ : गुरमुखि - जो मनुष्य गुरू के सम्मुख है । रतनु - प्रभु के नाम-रूपी कीमती पदार्थ । सुभाइ - स्वभाव (जैसे पंजाबी में *ਨਾਉ नाउ* से *ਨਾਇ नाइ* करण कारक है, वैसे *ਭਾਉ भाउ* से *ਭਾਇ भाइ* है । *ਸੁਭਾਉ सुभाउ* वास्तव में है *ਸੁਭਾਵ स्वभाव* - यानी अपना स्वभाव, अपनी लगन ), अपनी लगन से ही । पतीआए - तसल्ली करा लेता है, आदी बना लेता है । अलखु - जिस का कोई खास लक्षण दिखलाई न दे । लखाए

– सूझ पैदा कर देता है । चोट – मार ।

अर्थ : जो मनुष्य गुरू के कहे पर चलता है वह प्रभु में सुरति को जोड़ कर प्रभु-नाम-रतन पदार्थ ढूंढ लेता है । बस! यही सच्ची कमाई गुरमुख करता है और सच्चे प्रभु में अपने मन को आदी बना लेता है । जब उस प्रभु को भाता है तो गुरमुख उस अलक्ख प्रभु के गुणों की औरों को भी सूझ प्रदान कर देता है । हे नानक! जो मनुष्य गुरू के कहे पर चलता है वह विकारों की मार नहीं खाता ।।३५।।

गुरमुखि नामु दानु इसनानु ।।
गुरमुखि लागै सहजि धिआनु ।।
गुरमुखि पावै दरगह मानु ।।
गुरमुखि भउ भंजनु परधानु ।।
गुरमुखि करणी कार कराए ।।
नानक गुरमुखि मेलि मिलाए ।।३६।।

उच्चारण : *इसनान* का उच्चारण *इश्नान* करना है ।

पद अर्थ : गुरमुखि नामु – गुरमुख मनुष्य के ही नाम ( का जाप स्वीकार्य है), गुरू के हुकम में चल कर ही नाम सुमिरन करना ठीक है । भउ भंजनु – दुनियां वाले डर-सहम का नाश करने वाला प्रभु । परधानु – सब का मुखी सब का मालिक। करणी कार – करने योग्य काम ।

अर्थ : जो मनुष्य गुरू की दर्शाई राह पर चलता है, उस के नाम का जाप करना, दान करना और स्नान करना स्वीकार्य है । गुरू के सम्मुख होने से ही अडोल अवस्था में सुरति जुड़ती है । जो मनुष्य गुरू के सम्मुख है प्रभु की हजूरी में आदर पाता है । वह उस प्रभु को मिल जाता है, जो डर सहम नाश करने वाला है और जो सब का मालिक है।

गुरमुख व्यक्ति दूसरों से भी गुरू के आदेश के अनुरूप काम करवाता है । हे नानक ! वह उनको प्रभु के के संग मिला देता है।।३६।।

गुरमुखि सासत्र सिम्रिति बेद ।।
गुरमुखि पावै घटि घटि भेद ।।
गुरमुखि वैर विरोध गवावै ।।
गुरमुखि सगली गणत मिटावै ।।
गुरमुखि राम नाम रंगि राता ।।
नानक, गुरमुखि खसमु पछाता ।।३७।।

उच्चारण: *सासत्र* का उच्चारण *शास्त्र* करना है ।

पद अर्थ : भेद - रमज़, राज, भेद की बात । घटि घटि - प्रत्येक हृदय में व्यापक प्रभु । गणत - लेखा, हिसाब ।

अर्थ : गुरू के बताए राह पर चलने वाला मनुष्य मानो शास्त्रों समृतियों व वेदों का ज्ञान प्राप्त कर चुका है, (भाव, गुरू के आदेश में चलना ही गुरमुख के लिए वेदों शास्त्रों व समृतियों का ज्ञान है ) । गुरू के आदेश में चल कर वह प्रत्येक हृदय में व्यापक प्रभु की सर्वव्यापकता का भेद समझ लेता है । इसलिए गुरमुख दूसरों के साथ वैर-विरोध भुला लेता है । वह शत्रुता व विरोध का सारा लेखा ही मिटा देता है(भाव, कभी यह सोच मन में आने ही नहीं देता कि किसी ने कभी उस के साथ अन्याय किया है ।)

गुरू के सम्मुख होने वाला मनुष्य प्रभु के नाम के प्यार में रमा रहता है। हे नानक ! गुरू के सम्मुख मनुष्य ने खसम-प्रभु को पहचान लिया है ।।३७।।

बिनु गुर, भरमै आवै जाइ ।।
बिनु गुर, घाल न पवई थाइ ।।
बिनु गुर, मनूआ अति डोलाइ ।।
बिनु गुर, त्रिपति नही बिखु खाइ ।।
बिनु गुर, बिसीअरु डसै, मरि वाट ।।
नानक गुर बिनु घाटे घाट ।।३८।।

उच्चारण : *थाइ, मनूआ, नही* आदि शब्दों का उच्चारण बिंदी सहित *थाइं, मनूआं, नहीं,* करना है ।

पद अर्थ : भरमै - भटकता है । थाइ न पवई - स्वीकार्य नहीं होती। मनूआ - चंचल मन । डोलाइ - डोलता है, संश्यों में पड़ा रहता है । बिखु - ज़हर। त्रिपति - संतोष । बिसीअरु - सांप (संसार का मोह) ।

अर्थ : सतगुरू की शरण आए बिना मनुष्य माया में भटकता है और जन्म व मृत्यु के आवागवन में रहता है । गुरू की शरण के बिना कोई प्रयास अथवा श्रम स्वीकार्य नहीं होता । सतगुरू के बिना यह चंचल मन बहुत संश्यों में रहता है, ज़हर रूपी दुनियावी पदार्थ खा कर संतुष्टि नहीं होती । गुरू की राह पर चले बिना संसार का मोह-रूपी सांप डसता ही रहता है, और जीवन के सफर के आधे रास्ते में ही आत्मिक मौत मरना पड़ जाता है । हे नानक!

सतगुरू की शरण के बिना, मनुष्य को हानि ही हानि रहती है ।।३८।।

जिसु गुरु मिलै, तिसु पारि उतारै ।।
अवगण मेटै, गुणि निसतारै ।।
मुकति महा सुख, गुर सबदु बीचारि ।।
गुरमुखि कदे न आवै हारि ।।
तनु हटड़ी, इहु मनु वणजारा ।।
नानक, सहजे सचु वापारा ।।३९।।

उच्चारण : *महा* शब्द का उच्चारण बिंदी सहित *महां* करना है ।

पद अर्थ : गुणि - गुण के द्वारा, गुण दे कर । हारि - हार कर । हटड़ी - सुंदर सी दुकान, हाट । सहजे - सहज अवस्था में जुड़ कर ।

अर्थ : जिस मनुष्य को सतगुरू मिल जाता है, उस को वह *संसार सागर* से पार करा लेता है । गुरू उस के आवागवन को मिटा देता है और गुण दे कर उस को विकारों के जाल से बचा लेता है । जो मनुष्य गुरू के सम्मुख है वह जीवन की बाजी कभी हार कर नहीं आता । सतगुरू के दिव्य शबद की विचार व चिंतन करके, उस को माया के बंधनों से आजादी का सुख प्राप्त हो जाता है । हे नानक ! गुरमुख अपने शरीर को दुकान व मन को व्यापारी बनाता है और अडोलता में रह कर परमात्मा का नामरूपी व्यापार करता है ।।३९।।

गुरमुखि बांधिओ सेतु बिधातै ।।
लंका लूटी दैत संतापै ।।
रामचंदि मारिओ अहि रावणु ।।
भेदु बभीखण, गुरमुखि परचाइणु ।।
गुरमुखि साइरि पाहण तारे ।।
गुरमुखि कोटि तेतीस उधारे ।।४०।।

पद अर्थ : सेतु - पुल । बिधातै - विधाता ने, करतार ने । दैत - राक्षस । संतापै- दुखी करता है । रामचंदि - श्री राम चंद्र ने । अहि - सांप(मन) । परचाइणु - उपदेश। साइरि - सागर पर । पाहण - पत्थर। बभीखण - रावण का भाई विभीषण, जिस ने रामचंद्र जी को सारे भेद बताए थे ।

(जैसे रामचंद्र जी ने सीता को लाने के वास्ते समुंद्र पर पुल बांधा था)। रामचंद्र जी ने लंका लूटी और राक्षसों का वध किया, (उसी प्रकार गुरू ने कामादिकों के वशीभूत हुए शरीर को उन से छुड़ा लिया और वे पांच

दूत वश में हो गए) । रामचंद्र जी ने जैसे रावण का वध किया वैसे ही गुरमुख ने मन रूपी सर्प को मार दिया । सतगुरू का उपदेश मन को मारने में ऐसे काम आया जैसे विभीषण का भेद बताना(रावण को मारने के लिए काम आया) । (जैसे रामचंद्र जी ने पुल बांधते समय पत्थर समुंद्र पर तैरा दिए थे वैसे) सतगुरू ने संसार-समुंद्र से पत्थर-दिल मनुष्यों को तार दिया है । गुरू के द्वारा तेंतीस करोड़ भाव - अनंत जीव भवसागर में से पार हो गए हैं ।।४०।।

गुरमुखि चूकै आवण जाणु ।।
गुरमुखि, दरगह पावै माणु ।।
गुरमुखि, खोटे खरे पछाणु ।।
गुरमुखि लागै सहजि धिआनु ।।
गुरमुखि दरगह सिफति समाइ ।।
नानक, गुरमुखि बंधु न पाइ ।।४१।।

पद अर्थ : बंधु - रोक ।

अर्थ : जो मनुष्य गुरू के आदेश में चलता है उस का जन्म-मरण अथवा आवागवन का भंवर मिट जाता है । वह प्रभु की हजूरी में आदर प्राप्त करता है । गुरू के सम्मुख खोटे और खरे कामों का भेती हो जाता है । उस की सुरति अडोलता में जुड़ी रहती है । गुरमुख मनुष्य प्रभु के स्तुति-गायन के द्वारा प्रभु की हजूरी में टिका रहता है । हे नानक ! गुरमुख के जीवन की राह में विकारों का कोई अवरोध नहीं होता ।।४१।।

गुरमुखि, नामु निरंजन पाए ।।
गुरमुखि, हउमै सबदि जलाए ।।
गुरमुखि साचे के गुण गाए ।।
गुरमुखि, साचै रहै समाए ।।
गुरमुखि साचि नामि पति ऊतम होइ ।।
नानग गुरमुखि सगल भवण की सोझी होइ ।।४२ ।।

पद अर्थ : निरंजन - निर-अंजन, माया से रहित(अंजन -सुरमा, कालिख, माया की कालिख)। साचै - सच्चे प्रभु में । पति - इज्जत ।

अर्थ : गुरू के आदेश में चलने वाला मनुष्य निरंजन का नाम प्राप्त करता है, क्योंकि वह अपना अहं गुरू के शबद के द्वारा जला देता है । गुरू के सम्मुख हो कर मनुष्य सच्चे प्रभु के गुण-गायन करता है और सदा कायम

रहने वाले प्रभु में लीन रहता है ।

सच्चे नाम में जुड़े रहने के कारण गुरमुख को उच्च सम्मान मिलता है । हे नानक! गुरमुख मनुष्य को सारे भवनों की सूझ हो जाती है, भाव गुरमुख को यह समझ आ जाती है कि प्रभु सारे ही भवनों में मौजूद है ।।४२।।

कवण मूलु, कवण मति वेला ।।
तेरा कवणु गुरू, जिस का तू चेला ।।
कवण कथा ले रहहु निराले ।।
बोलै नानकु सुणहु तुम बाले ।।
ऐसु कथा का देइ बीचारु ।।
भवजलु सबदि लंघावणहारु ।।४३।।

उच्चारण : *रहहु* का उच्चारण *रहो* तथा *सुणहु* का उच्चारण *सुणो* करना है।

पद अर्थ : मूलु- प्रारंभ । वेला -समय । कथा - बात । कवण कथा - कौन सी बात करने से ? निराले - निर्लिप्त, अलग । बाले - हे बालक! सबदि - शबद के द्वारा । लंघावणहारु - पार कराने में समर्थ ।

अर्थ: (प्रश्न) - जीवन का मूल क्या है ? मनुष्य के जीवन का यह समय कौन सी शिक्षा प्राप्त करने का है ? तूं किस गुरू का चेला है? कौन सी बात से तूं निर्लिप्त रहता है ?

हे बालक(नानक!) सुनो, हमें इस बात का भी विचार बताओ कि शबद के द्वारा गुरू, जीव को संसार-समुंद्र से पार करने में समर्थ है ।।४३।।

पवन अरंभु, सतिगुर मति वेला ।।
सबदु गुरू, सुरति धुनि चेला ।।
अकथ कथा ले रहउ निराला ।।
नानक जुगि जुगि गुर गोपाला ।।
ऐकु सबदु जितु कथा वीचारी ।।
गुरमुखि हउमै अगनि निवारी ।।४४ ।।

उच्चारण : *रहउ* को *रहो* उच्चारित करना है ।

पद अर्थ : पवन - प्राण । सुरति धुनि - सुरति की धुनि, लगन, टिकाव। अकथ- वह प्रभु जिस के सही स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। रहउ - मैं रहता हूं । जुगि जुगि - हरेक युग में । गोपाल - धरती को पालने

वाला । एकु सबदु - केवल शबद ही । जितु -जिस के द्वारा । निवारी - दूर की है ।

अर्थ :(उत्तर) प्राण ही हस्ती का मूल हैं । यह मानव जन्म का समय सतगुरू जी की शिक्षा ग्रहण करने का है । शबद मेरा गुरू है, मेरी सुरति का टिकाव उस गुरू का सिख है ।

मैं अकथ्य प्रभु की बातें कर के, भाव - गुण गायन करके, माया से निर्लिप्त रहता हूं । और, हे नानक ! वह गुर-गोपाल प्रत्येक युग में मौजूद है।

गुर-शबद के द्वारा प्रभु के गुणों की विचार व चिंतन किया जा सकता है । इस शबद के द्वारा ही गुरमुख मनुष्य ने अहं अथवा स्वार्थ रूपी ज्वाला अपने अंदर से दूर की है ।

मैण के दंत किउ खाईअै सारु ।।
जितु गरबु जाइ, सु कवणु अहारु ।।
हिवै का घरु मंदरु, अगनि पिराहनु ।।
कवन गुफा, जितु रहै अवाहनु ।।
इत उत किस कउ जाणि समावै ।।
कवन धिआनु मनु मनहि समावै ।।४५।।

उच्चारण : *मनहि* का उच्चारण बिंदी सहित *मनहिं* करना है ।

पद अर्थ : मैण - मोम । सारु - लोहा । जितु - जिस के द्वारा । गरबु - अहंकार । अहारु - खाना । हिव - बर्फ । पिराहनु - पहरावा, चोला । जितु गुफा - जिस गुफा में । अवाहनु - अडोल । इत उत - यहां, वहां, लोक परलोक, हर स्थान पर । मनहि - मन में ही । धिआनु - सुरति, मन को एक टिकाने रखने के लिए टिकाऊ ख्याल ।

अर्थ :(प्रश्न) मोम के दांतों से लोहा कैसे चबाया जाए ? वह कौन सा खाना है जिस से मन का अहंकार दूर हो जाए ? यदि बर्फ का मंदिर हो, और अग्नि का चोला पहन रखा हो तो उस को किस गुफा में रखें कि वह टिका रहे?

यह मन, *किस* को यहां-वहां भाव हर स्थान पर जान कर उस में लीन रहे ? वह कौन सा टिकाऊ ख्याल है, जिससे मन अपने अंदर ही टिका रहे और बाहर न भटके ।। ४५।।

हउ हउ मैं मै विचहु खोवै ।।
दूजा मेटै ऐको होवै ।।
जगु करड़ा मनमुखु गावारु ।।

सबदु कमाईऐ, खाईऐ सारु ।।
अंतरि बाहरि ऐको जाणै ।।
नानक, अगनि मरै सतिगुर कै भाणै ।।४६।।

उच्चारण : *हउ, मै, विचहु* का उच्चारण बिंदी सहित *हउं, मैं, विचहुं* करना है ।

पद अर्थ : दूजा - दूसरा भाव, तेरे-मेरे का भेदभाव । सारु - लोहा । अगनि - तृष्णा की आग । हउ हउ मै मै - हर समय *मैं* का ख्याल, *मैं बड़ा हो जाउं, मैं अमीर हो जाऊं*, हर समय यह ख्याल, खुदगर्जी ।

अर्थ : (उत्तर) गुरू के सम्मुख रहने वाला मनुष्य मन में से स्वार्थ को दूर करता है, भेदभाव मिटा देता है । सब के साथ मेलजोल बढ़ाता है । पर मूर्ख मनुष्य, मन के पीछे चलता है, उसके लिए यह संसार करड़ा है, (भाव - जीवन दुखों की खान है) । इस संसार का दुख रूपी लोहा तभी चबाया जा सकता है यदि सतगुरू के शबद को अपने जीवन में ढालें, भाव गुरू के आदेश में चलें । बस! यह है मोम के दांतों से लोहे को चबाना । हे नानक ! जो मनुष्य अपने अंदर व बाहर, भाव सारे संसार में एक प्रभु को मौजूद समझता है उस की तृष्ण की आग सतगुरू की इच्छा में चलने से बुझ जाती है ।।४६।।

सच भै राता गरबु निवारै ।।
ऐको जाता सबदु वीचारै ।।
सबदु वसै सचु अंतरि हीआ ।।
तनु मनु सीतलु रंगि रंगीआ ।।
कामु, क्रोधु बिखु अगनि निवारे ।।
नानक, नदरी नदरि पिआरे ।।४७।।

पद अर्थ : सच भै - सच्चे प्रभु के डर में । गरबु - अहंकार । अंतरि हीआ - हृदय में । रंगि - रंग में । नदरी - कृपा की नजर करने वाला प्रभु।

अर्थ : सदा कायम रहने वाले प्रभु के भय में मनुष्य अपने अंदर के अहंकार को दूर कर लेता है । वह सदा सतगुरू के शबद की विचार करता है और उसका चिंतन करता है । उस शबद की सहायता से उसने हर स्थान पर एक प्रभु को पहचान लिया है ।

जिस मनुष्य के हृदय में गुरू के शबद का संचार है, उस के अंदर प्रभु स्वयं निवास करता है । प्रभु के प्यार में रम कर, उस का मन तन

ठंठा-शीतल हो जाता है । वह अपने अंदर से काम, क्रोध रूपी ज़हर व त्रृष्णा की ज्वाला को मिटा लेता है । हे नानक! वह मनुष्य कृपा करने वाले प्यारे प्रभु की दृष्टि में रहता है ।।४७।।

कवन मुखि, चंदु हिवै घरु छाइआ ।।
कवन मुखि, सूरजु तपै तपाइआ ।।
कवन मुखि, कालु जोहत नित रहै ।।
कवन बुधि, गुरमुखि पति रहै ।।
कवन जोधु, जो कालु संघारै।।
बोलै बाणी नानकु बीचारै ।।४८।।

पद अर्थ : कवन मुखि - किस द्वार से? किस साधन से? किस तरह? हिवै घरु - बर्फ(शीतलता) का घर । छाइआ - प्रभाव डाले रखे । सूरजु - ज्ञान का सूर्य । जोहत - देखता है । जोधु - शूरवीर । संघारै - मार दे । बाणी बीचारै - विचार की बाणी, विचार के सिलसिले की बात, *गोष्ठी* के संबंध में।

अर्थ : नानक कहता है, गोष्ठी के सिलसिले में योगियों ने पूछा - किस तरह मनुष्य के मन में शीतलता का घर चंद्रमा टिका रहे,(भाव, किस तरह मन में सदा शीतलता व शांति बनी रहे)? किस तरह मन में ज्ञान का सूर्य तपता रहे(भाव, कैसे ज्ञान का प्रकाश सदा बना रहे)? किस तरह काल, नित्य दिखने से रह जाए (भाव, कैसे हर समय मृत्यु का सहम मिट जाए)? वह कौन सी समझ है जिस के कारण गुरमुख मनुष्य की इज्जत बनी रहती है? वह कौन-सा शूरवीर है जो मौत के भय को मार लेता है?।।४८।।

सबदु भाखत ससि जोति अपारा ।।
ससि घरि सुरु वसै, मिटै अंधिआरा ।।
सुखु दुखु सम करि नामु अधारा ।।
आपे पारि उतारणहारा ।।
गुर परचै मनु साचि समाइ ।।
प्रणवति नानकु कालु न खाइ ।।४९।।

पद अर्थ : भाखत - उच्चारण करते हुए । ससि - चंद्रमा(भाव शांति)। घरि - घर में । सूरु - सूर्य(भाव ज्ञान) । सम - बराबर । अधार - आश्रय । गुर परचै - सतगुरू के साथ गहरा मेल-जोल बनाने से । साचि - सच्चे प्रभु में । प्रणवति - विनती करता है ।

अर्थ :(उत्तर) सतगुरू के शबद का उच्चारण करते हुए हृदय में चंद्रमा की अपार ज्योति प्रकट हो जाती है (भाव, हृदय में शांति पैदा होती है )

चंद्रमा के घर में सूर्य आ बसता है(भाव, शाति हृदय में ज्ञान का सूर्य चढ़ जाता है) और अज्ञानता का अंधकार मिट जाता है ।

गुर-शबद की कृपा द्वारा जब गुरमुख सुख और दुख को एक समान जान कर *नाम को* जीने का आश्रय बनाता है(भाव, दुख व सुख में प्रभु को याद करता है), तब तारनहार प्रभु उस को स्वयं ही *संसार-सागर* से पार लगा लेता है ।

नानक विनती करता है कि सतगुरू के संग गहरी जान-पहचान बनाने से गुरमुख का मन सच्चे प्रभु में लीन रहता है । उसको मौत का डर नहीं लगता ।।४९।।

नाम ततु सभ ही सिरि जापै ।।
बिनु नावै दुखु कालु संतापै ।।
ततो ततु मिलै मनु मानै ।।
दूजा जाइ इकतु घरि आनै ।।
बोलै पवना, गगनु गरजै ।।
नानक निहचलु मिलणु सहजै ।।५०।।

उच्चारण : *नावै* का उच्चारण बिंदी सहित *नावैं* करना है ।

पद अर्थ - नाम ततु - प्रभु के नाम की सच्चाई । सभ ही सिरि जापै - सारे प्रकार के जाप के सिर पर, सारी तरह के जाप से श्रेष्ठ है। संतापै - दुखी करता है । ततो ततु - तत्व ही तत्व, निरोल तत्व, निरोल प्रभु-नाम की सच्चाई। इकतु घरि - एक घर में (भाव, एकता के घर में) पवन- प्राण । बोलै पवना - प्राण बोलता है, ईश्वरीय जीवन की लहर चल पड़ती है । गगनु - आकाश, दसम द्वार, ईश्वरीय मिलाप की अवस्था । गरजै - गर्जता है, बलवान होता है । मिलणु - मिलाप। सहजै - सहज अवस्था में, आत्मिक अडोलता में ।

अर्थ : प्रभु के नाम की सच्चाई को समझना सारे जापों का शिरोमणी जाप है । जब तक हृदय में नाम का वास नहीं होता, मनुष्य को कई प्रकार का दुख सताता है, मौत का डर दुखी करता है । जब हृदय में निरोल प्रभु-नाम की सच्चाई प्रकट हो जाती है (कि प्रभु का नाम ही सदा स्थाई रहने वाला है) तो मनुष्य का मन उस सच्चाई में पसीज जाता है, तेरे-मेरे वाला स्वभाव दूर हो जाता है, मनुष्य एकता के घर में आ टिकता है, दैवी जीवन की लहर चल पड़ती है, ईश्वरीय मिलाप की अवस्था बलवान हो जाती

है । हे नानक ! इस प्रकार सहज-अवस्था में टिकने से जीव तथा प्रभु का मिलाप सदा के लिए पक्का हो जाता है ।।५०।।

अंतरि सुंनं, बाहरि सुंनं, त्रिभवण सुंन मसुंनं ।।
चउथे सुंनै जो नरु जाणै, ता कउ पापु न पुंनं ।।
घटि घटि सुंन का जाणै भेउ ।।
आदि पुरखु निरंजन देउ ।।
जो जनु नाम निरंजन राता ।।
नानक सोई पुरखु बिधाता ।।५१।।

उच्चारण: *ता* का उच्चारण बिंदी सहित *तां* करना है ।

पद अर्थ : सुंन - निर्गुण प्रभु, वह प्रभु जिस में माया के फुरने नहीं उठते। सुंन मसुंन - सुन्न ही सुन्न, विशुद्ध निर्गुण प्रभु को जो त्रिगुणी माया के प्रभाव से ऊंचा है। घटि घटि सुंन का -प्रत्येक हृदय में व्यापक निर्गुण प्रभु का, उस प्रभु का जो प्रत्येक हृदय में मौजूद भी है और निर्लिप्त भी है । भेउ - भेत । बिधाता - कर्ता, सृजक ।

अर्थ : अंदर और बाहर भाव, गुप्त और प्रकट, दृष्टव्य और अदृष्ट पदार्थों में हर स्थान पर सारी त्रिलोकी में वही प्रभु व्यापक है जिस में माया वाले फुरने या विचार ही नहीं उठते हैं । जो मनुष्य त्रिगुणी माया के प्रभाव से ऊंचा रहने वाले उस प्रभु को सही तौर पर समझ लेता है, उस को भी चौथी अवस्था में टिका होने के कारण, पाप व पुन्य महसूस नहीं हो सकता(भाव, कोई पाप किसी कुकर्म की ओर नहीं प्रेरित करता और कोई पुन्य-कर्म उस के अंदर किसी स्वर्ग आदि की लालसा पैदा नहीं करता है)।

जो मनुष्य प्रत्येक हृदय में मौजूद निर्गुण प्रभु का भेद जान लेता है (भाव, जो मनुष्य यह दृढ़ कर लेता है कि प्रभु प्रत्येक कण में मौजूद भी है और फिर भी निर्लिप्त है, वह मनुष्य भी परिवार में रहते हुए निर्लिप्त हो कर) सब के मूल, माया से विरक्त प्रभु का ही रूप हो जाता है ।

हे नानक!जो मनुष्य माया से विरक्त परमात्मा के नाम का मतवाला है, वही सृजनहार प्रभु का रूप हो जाता है ।।५१।।

सुंनो सुंनु कहै सभु कोई ।।
अनहत सुंनु कहा ते होई ।।
अनहत सुंनि रते से कैसे ।।
जिस ते उपजे तिस ही जैसे ।।
ओइ जनमि न मरहि न आवहि जाहि ।।

नानक गुरमुखि मनु समझाहि ।।५२।।

उच्चारण : बिंदी सहित *कहा* का उच्चारण *कहां*, *मरहि* का *मरहिं(मरैं)*, *आवहि का आवहिं(आवैं)*, *जाहि* का *जाहिं*, *समझाहि* का *समझाहिं* करना है ।

पद अर्थ : सुंनो सुंनु - सुन्न ही सुन्न, अफुर अवस्था, विशुद्ध वह अवस्था जहां माया के फुरने, अथवा माया व धन-दौलत का ध्यान न उठे । अनहत - समरस, सदा टिके रहने वाला । कहा ते - कहां, कैसे ? ओइ - वे बंदे ।

अर्थ : प्रत्येक मनुष्य *अफुर* अवस्था का वर्णन करता है पर यह बात कोई बिरला ही जानता है कि सदा टिके रहने वाली अफुर अवस्था कैसे पाई जा सकती है, क्योंकि इस अवस्था वाला जीवन जीने से ही इस अवस्था की समझ पड़ सकती है ।

यदि कोई पूछे कि अफुर अवस्था में जुड़े हुए लोग कैसे होते हैं तो इस का उत्तर है यह है कि वे मनुष्य उस परमात्मा जैसे ही हो जाते हैं जिस से वे पैदा हुए हैं । हे नानक ! यदि मनुष्य गुरू के आदेश पर चल कर मन को सुमति पर चलाते हैं, वे आवागवन के भंवर में नहीं आते, वे न बार-बार जन्म लेते हैं और न बार-बार मरते हैं ।।५२।।

नउ सर सुभर दसवै पूरे ।।
तह अनहत सुंन वजावहि तूरे ।।
साचै राचे देखि हजूरे ।।
घटि घटि साचु रहिआ भरपूरे ।।
गुपती बाणी परगटु होइ ।।
नानक परखि लए सचु सोइ ।।५३।।

उच्चारण : नउ, दसवै, वजावहि(वजावै), हजूरे आदि शब्दों का उच्चारण बिंदी सहित *नउं, दसवैं, वजावहिं (वजावैं), हज़ूरे* करना है । *तह* का उच्चारण *तहि* करना है।

पद अर्थ : नउ सर - शरीर की नौ गुल्लक । सुभर - पूरे-के-पूरे किनारे तक भरे हुए । नउ सर सुभर - किनारे तक भरी हुई सरोवरों की नौं गुल्लकें, उन सरोवरों जैसी गुल्लकें जिनके बहाव रुके हुए हैं । दसवै - दसवें(सर) में । तह- उस अवस्था में । अनहत सुंन तूरे - समरस अफुर अवस्था के बाजे। तूरे - बाजे। हजूरे- हाजिर-नाजिर, अंग संग । गुपती बाणी - छिपा हुआ रौ। सोइ - वह मनुष्य ।

अर्थ: जब नाम-अमृत से नौ गुल्लकें किनारे तक भर जाती हैं, तब उन में भौतिक - मायावादी पदार्थों की ओर दौड़-धूप व आकर्षण समाप्त हो जाता है और उनके बहाव दसवें सरोवर(दशम द्वार) में जा बैठते हैं । तब

गुरमुख समरस अफुर अवस्था के बाजे बजाते हैं(भाव, अफुर अवस्था उनके अंदर इतनी बलशाली हो जाती है कि कोई और सोच, फुरना वहां आ ही नहीं सकता । इस अवस्था में गुरमुख सदा कायम रहने वाले प्रभु को अंग-संग देख कर उस में टिके रहते है। उनको वह सच्चा प्रभु प्रत्येक कण में व्यापक दिखलाई देता है । इस तरह जिस मनुष्य के अंदर वह छिपी हुई दैवी जीवन की रौं प्रकट होती है(भाव, जिस को वह अपने अंग-संग और सभी में व्यापक दिखलाई देता है) हे नानक ! वह मनुष्य उस सच्चे प्रभु के नाम-रूपी सौदे के महत्व को समझ लेता है ।।५३।।

सहज भाइ मिलीऐ, सुखु होवै ।।
गुरमुखि जागै, नीद न सोवै ।।
सुंन सबदु अपरंपरि धारै ।।
कहते मुकतु सबदि निसतारै ।।
गुर की दीखिआ, से सचि राते ।।
नानक, आपु गवाइ मिलण नही भ्राते ।।५४।।

पद अर्थ : सहज भाइ - सहज अवस्था के भाव में, अडोलता में पहुंच कर । सुंन सबदु - निर्गुण प्रभु के स्तुति गायन की बाणी । अपरंपरि - अनंत प्रभु में । सबदि - शब्द के द्वारा। दीखिआ - वह शिक्षा जिस से सिख अपने आप को गुरू के हवाले करता है । भ्राते - भ्रांति, भटकना ।

अर्थ : यदि अडोलता में रह कर प्रभु को मिलें तो आत्मिक सुख महसूस होता है । जो मनुष्य गुरू के आदेश में चलता है, वह सुचेत रहता है, माया की नींद में नहीं सोता । परमात्मा के स्तुति-गायन की बाणी उस को अनंत प्रभु में टिकाए रखती है । इस बाणी का उच्चारण कर-कर के गुरमुख अहं से स्वतंत्र हो जाता है और दूसरों को इस शबद के द्वारा मुक्त करवाता है ।

हे नानक! जिन्होंने गुरू की शिक्षा को ग्रहण किया है वे सच्चे प्रभु में रम गए हैं । उनके अंदर से *स्व* की भावना को मिटा कर उनका प्रभु से मिलन हो जाता है, मन की भटकन मिट जाती है ।।५४।।

उच्चारण : *नीद, सबदि मखर, नही का उच्चारण बिंदी सहित नींद, शबद मिंधर, नहीं, करना है ।*

कुबुधि चवावै, सो कितु ठाइ ।।

किउ ततु न बूझै चोटा खाइ ।।
जम दरि बाधे कोइ न राखै ।।
बिनु सबदै, नाही पति साखै ।।
किउकरि बूझै पावै पारु ।।
नानक, मनमुखि न बुझै गवारु ।।५५।।

पद अर्थ : चवावै - चुका दे, दूर करे । सो - यह बात । कितु ठाइ - किस स्थान पर ? दरि - दर पर । पति साखै - इज्जत व इतबार। पारु - परला किनारा ।

अर्थ : (प्रश्न) यह बात किस स्थान पर हो सकती है कि मनुष्य अपनी दुरमति को दूर कर ले ? मनुष्य क्यों वास्तविकता को नहीं समझता और दुखी होता है ? यम के दर पर बंधे हुए की कोई सहायता नहीं कर सकता, सतगुरू के शबद के बिना इस की कहीं इज्जत नहीं, इतबार नहीं(भाव, गुरू के शबद के अनुसार न चलने के कारण मनुष्य लोगों में इज्जत इतबार गंवा लेता है, दुनियां की मौज में फंसा होने के कारण मृत्यु से भी हर समय भयभीत रहता है, दुखी रहता है, फिर भी वास्तविकता को समझता नहीं । यह क्यों ?) ।

हे नानक! मनमुख मूर्ख समझता नहीं, यह कैसे समझे और संसार सागर के परले किना पर लगे ? ।।५५।।

उच्चारण :(1) *ठाइ, चोटा, बाधे, नही, किउकर* आदि शब्दों का उच्चारण बिंदी सहित *ठांइ, चोटां, बांधे, नहीं, किउंकर* करना है ।

(2) कुबुधि *कुबुधि*, ततु *उतु*, पत *पउ* आदि शब्दों का उच्चारण देवनागरी(हिंदी) में आद्याक्षर लगाकर *व पंजाबी लिपि में अॅधव ( ˘ )* लगाकर *कुबुद्धि कुबॅधि*, तत्त *उॅतु*, पत्त *पॅउ*, उच्चारित करना है ।

कुबुधि मिटै, गुर सबदु बीचारि ।।
सतिगुरु भेटै मोख दुआर ।।
ततु न चीनै मनमुखु जलि जाइ ।।
दुरमति विछुड़ि चोटा खाइ ।।
मानै हुकमु सभे गुण गिआन ।।
नानक, दरगह पावै मानु ।।५६।।

उच्चारण : *चोटा* का उच्चारण बिंदी सहित *चोटां* करना है ।

पद अर्थ : भेटै - मिले । दुरमति - बुरी अक्ल के कारण ।

चोटा स्वाइ - मार खाता है, दुखी होता है ।

अर्थ(उत्तर): सतगुरू के शबद की विचार व चिंतन करने से बुरी मति दूर हो जाती है । जब गुरू मिल जाता है तब इस बुरी मति से छुटकारे की राह मिल जाती है । परंतु जो मनुष्य मन के पीछे चलता है, वह वास्तविकता को नहीं पहचानता, विकारों में जलता रहता है । वह दुरमत के कारण प्रभु से बिछुड़ कर दुखी होता है।

हे नानक! जो मनुष्य गुरू का हुकम मानता है उस में सारे गुण आ जाते हैं, उस को सारी सूझ प्राप्त हो जाती है, और वह प्रभु की हजूरी में आदर पाता है ।।५६।।

साचु वखरु धनु पलै होइ ।।
आपि तरै, तारे भी सोइ ।।
सहजि रता बूझै, पति होइ ।।
ता की कीमति करै न कोइ ।।
जह देखा तह रहिआ समाइ ।।
नानक, पारि परै सच भाइ ।।५७।।

उच्चारण : (1) *ता, जह (जहि), तह (तहि)* आदि शब्दों का उच्चारण बिंदी सहित *तां, जहं(जहिं), तहं (तहिं)* करना है ।

(2) *वखरु, पलै, रता, पति* आदि शब्दों का उच्चारण आद्याक्षर लगाकर *वक्खर, पल्लै, रत्ता व पत्त* करना है ।

पद अर्थ : वखरु - सौदा । पलै होइ - प्राप्त किया हो । सोइ - वह मनुष्य । सच भाइ - सत्य के भाव में, सच्चे प्रभु के अनुकरणीय हो कर, सच्चे के आदेश में रह कर ।

अर्थ : जिस मनुष्य ने सच्चा सौदा नाम-धन कमाया है वह स्वयं *दुत्तर सागर* से तैर कर पार हो जाता है तथा दूसरों को पार लगवाता है। अडोल अवस्था में मस्त रह कर वास्तविकता को समझता है और आदर पाता है । ऐसे मनुष्य का कोई मोल नहीं डाल सकता ।

हे नानक ! सच्चे प्रभु की इच्छा में रह कर वह मनुष्य संसार-सागर से पार हो जाता है, जिधर देखता है उधर प्रभु ही प्रभु उस को व्यापक दिखलाई देता है ।।५७।।

सु सबद का कहा वासु कथीअले, जितु तरीऐ भवजलु संसारो ।।

त्रै सत अंगुल वाई कहीऔ, तिसु कहु कवनु अधारो ।।
बोलै खेलै असथिरु होवैं, किउकरि अलखु लखाए ।।
सुणि सुआमी सचु नानकु प्रणवै, अपणे मन समझाए ।।
गुरमुखि सबदे सचि लिव लागै, करि, करि नदरी मेलि मिलाए ।।
आपे दाना आपे बीना, पूरै भागि समाए ।।५८।।

पद अर्थ : कथीअले - कहा जाए । त्रै सत - तीन और सात,(भाव) दस। वाई - प्राण ।(नोट: जोगियों के विचार के अनुसार सांस बाहर निकालने से हवा दस उंगली के फासले पर बाहर जाती है, फिर सांस अंदर की ओर खींचते हैं)। कवन - क्या? सुणि- सुन कर । मन समझाए - अपने मन को कैसे समझाए? (नोट: पहली चार पंक्तियों में योग का प्रश्न है, पांचवी पंक्ति से उत्तर शुरू होता है)। सबदे - शब्द के द्वारा । सचि - सच्चे प्रभु में । नदरी - कृपा की नजर । दाना - दिल की जानने वाला प्रभु । बीना - पहचानने वाला । पूरै भागि - ऊंची किस्मत के कारण । समाए- प्रभु में टिका रहता है ।

अर्थ(प्रश्न): जिस शबद के द्वारा संसार-समुंद्र को पार करते हैं, उस शबद का टिकाना कहां का, कहा जा सकता है? *प्राण*(भाव, श्वास) को दस-उंगल-प्रमाण कहते हैं, बताओ इसका आसरा कौनसा है ? जो जीवात्मा इस शरीर में बोलती है और कलोल करती है वह सदा के लिए कैसे टिक सकती है और कैसे वह उस प्रभु को देखे, जिसका कोई चिह्न चक्र नहीं है? नानक कहता है (योगियों ने पूछा - ) हे स्वामी ! सच्चे प्रभु की बात सुन कर मनुष्य अपने मन को कैसे सुमति दे सकता है ?

(उत्तर): जो मनुष्य गुरू के आदेश में चलता है, गुरू-शबद के द्वारा उस की लिव सच्चे प्रभु में लग जाती है, और प्रभु कृपा की नजर कर के उस को अपने में जोड़ लेता है, क्योंकि प्रभु उस के दिल की स्वयं ही जानता है, स्वयं ही पहचानता है । इस तरह ऊंची किस्म के कारण गुरमुख मनुष्य प्रभु में टिका रहता है ।।५८।।

उच्चारण : (1)*कहा* तथा *किउकरि* का उच्चारण बिंदी सहित *कहां* और *किउंकर* करना है ।

(2) *अलख* का उच्चारण आद्याक्षर सहित *अलक्ख* करना है ।

सु सबद कउ निरंतरि वासु अलखं, जह देखा तह सोई ।।
पवन का वासा सुंन निवासा, अकल कला धर सोई ।।
नदरि करे सबदु घट महि वसै, विचहु भरमु गवाए ।।

तनु मनु निरमलु निरमल बाणी, नामो मंनि वसाए ।।
सबदि गुरू भवसागरु तरीऐ, इत उत ऐको जाणै ।।
चिहनु वरनु नही छाइआ माइआ, नानक सबदु पछाणै ।।५९।।

पद अर्थ : देखा - वेखता हूं । पवन - शबद, गुरू का शबद, प्रभु के स्तुति-गायन का शबद ।(नोट - *त्रै सत अंगुल वाई* का उत्तर पउड़ी नंबर 60 में है। अतः, यहां *पवन* का अर्थ *वाई* या *हवा* नहीं है । भाई गुरदास जी लिखते हैं - *पवनु गुरू गुरसबदु है* भाव, *पवन - गुरसबदु है* ) । अकल -(सं अकल) जिसके टुकड़े नहीं होते । पूर्ण पारब्रहम । कलाधर- सत्ता धारण करने वाला । नामो - अक्षर *म* के साथ दो मात्राएं हैं । पाठ में ( ो ) की मात्रा को पढ़ना है । मंनि - मन में। भव - संसार । छाइआ - प्रभाव, साया ।

अर्थ : (जिस *शबद* के द्वारा *दुत्तर सागर* पार हुआ जाता है) उस *शबद* को समरस स्थान मिला हुआ है, भाव, वह शबद हर स्थान पर भरपूर है, वह *शबद* अलक्ख प्रभु का रूप है, मैं जिधर देखता हूं वह शबद ही शबद है, जैसे अफुर प्रभु का वास हर स्थान पर है वैसे ही *शबद* का वास हर स्थान पर है । *शबद* वही है जो संपूर्ण सत्ताधारी प्रभु है(भाव, *प्रभु* तथा प्रभु के *स्तुति-गायन* का शबद एक ही है ।

जिस मनुष्य पर प्रभु कृपा की नजर करता है, उस के हृदय में यह *शबद* बसता है, वह मनुष्य हृदय में से भटकन दूर कर लेता है, उस का तन और उस का मन तथा उस की बाणी पवित्र हो जाते हैं । वह मनुष्य प्रभु का नाम ही अपने मन में बसाए रखता है ।

सतगुरू के *शबद* के द्वारा संसार-सागर पार किया जाता है । जो पार हो जाता है, वह यहां इहलोक तथा परलोक में, हर स्थान पर एकीश्वर को ही व्यापक जानता है । हे नानक! जो मनुष्य इस *शबद* के संग गहरा मेल-जोल बना लेता है, उस पर माया का प्रभाव नहीं रहता और उस का अपना अलग वर्ण और चिन्ह नहीं रह जाता (भाव, उस की भिन्नता मिट जाती है, उस के अंदर से तेरे-मेरे की भावना दूर हो जाती है )।।५९।।

(नोटः पउड़ी संख्या 21 में जोगी का प्रश्न है - *सुंन कहा घर वासो*। पउड़ी नंबर 23 में सतगुरू जी का उत्तर है - *सुंन निरंतरि वासु लीआ ।।* इसी प्रकार पउड़ी नंबर 59 में प्रश्न है - *सु सबद का कहा वासु।।* यहां उत्तर है - *सु सबद कउ निरंतरि वासु ।।* भाव *सुंन* और *शबद* दोनों का *निरंतर*

*वास* है । इसका अर्थ यह है कि गुरू नानक देव जी की दृष्टि में *प्रभु* और उसके स्तुति-गायन का *शबद* दोनों एकरूप हैं ।

उच्चारण : (1) *जह (जहि), तह (तहि), महि, विचहु (विचो), नही* आदि शब्दों का उच्चारण बिंदी सहित *जहं (जहिं), तहं (तहिं), महिं, विचहुं (विचों), नहीं* आदि करना है ।

(2) *नामो* का उच्चारण *नामो* करना है ।

त्रै सत अंगुल वाई अउधू, सुंन सचु आहारो ।।
गुरमुखि बोलै ततु विरोलै, चीनै अलख अपारो ।।
त्रै गुण मेटै सबदु वसाए, ता मनि चूकै अहंकारो ।।
अंतरि बाहरि ऐको जाणै, ता हरि नामि लगै पिआरो ।।
सुखमना इड़ा पिंगुला बूझै, जा आपे अलखु लखाए ।।
नानक तिहु ते ऊपरि साचा, सतिगुर सबदि समाए ।।६०।।

पद अर्थ : अउधू - हे योगी ! आहारो - खुराक, आसरा । बोलै - जप करता है । विरोलै - बिलौता है । इड़ा - बाई नासिका की नाड़ी । पिंगुला - दाई नासिका की नाड़ी । सुखमना - बीचकी नाड़ी, जहां प्राणायाम के समय श्वास टिकाए जाते हैं तिहु ते - तीनों से, इड़ा, पिंगुला, सुखमना के अभ्यास से, प्राणायाम द्वारा। मनि - मन में से । चूकै - मिट जाता है ।

अर्थ (उत्तर): हे योगी! *दस-उंगल-प्रमाण* प्राणों की खुराक अफुर सच्चा प्रभु है(भाव, श्वास-श्वास प्रभु के नाम का ही जाप करना चाहिए । प्रभु का नाम ही प्राणों का आधार है ) । जो मनुष्य गुरू के आदेश में चल कर प्रभु के नाम का जाप करता है, वह वास्तविकता भाव - संसार का मूल हासिल कर लेता है, वह अलक्ख व अपार प्रभु को पहचान लेता है अर्थात प्रभु के संग गहरी जान-पहचान बना लेता है ।

जब मनुष्य गुरू का शबद हृदय में बसाता है तो माया का त्रैगुणी प्रभाव मिटा लेता है, और उस के मन में से अहंकार का नाश हो जाता है । जब वह अपने अंदर और बाहर संसार में एक प्रभु को ही देखता है तो उस का प्रभु के संग प्यार हो जाता है ।

हे नानक! जब अलक्ख प्रभु अपने स्वरूप की समझ प्रदान करता है, तब गुरमुख इड़ा, पिंगुला, सुखमना की वास्तविकता को समझ लेता है। उसको यह समझ आ जाती है कि सदा कायम रहने वाला प्रभु इड़ा, पिंगुला व सुखमना के अभ्यास से ऊपर है, उस में तो सतगुरू के शबद के द्वारा ही

समाहित हुआ जाता है ।।६०।।

उच्चारण : (1) *आहारो* का उच्चारण *अ* को ( ा ) की मात्रा लगा कर करना है।

(2) *अलख* का उच्चारण आद्याक्षर सहित *अलक्ख* करना है ।

(3) *ता, जा, तिहु(तिह)* आदि शब्दों का उच्चारण बिंदी सहित *तां, जां, तिंहु(तिंह)* करना है ।

मन का जीउ पवनु कथीअले, पवनु कहा रसु खाई ।।
गिआन की मुद्रा कवन अउधू, सिध की कवन कमाई ।।
बिनु सबदै रसु न आवै अउधू, हउमै पिआस न जाई ।।
सबदि रते अंमृत रसु पाइआ, साचे रहे अघाई ।।
कवन बुधि जितु असथिरु रहीऐ, कितु भोजनि त्रिपतासै ।।
नानक दुखु सुखु सम करि जापै, सतिगुर ते कालु न ग्रासै ।।६१।।

उच्चारण : *कहा* का उच्चारण बिंदी सहित *कहां* करना है ।

पद अर्थ : जीउ - जान, आसरा । पवनु - प्राण । रसु - खुराक । कहा - कहां से ? मुद्रा - साधन । सिध - योग साधना में पहुंचा हुआ योगी । कवन कमाई - क्या मिल जाता है ? अघाइ रहे - भरपेट रहते हैं, तृप्त रहते हैं। कितु भोजनि - किस भोजन के द्वारा ? त्रिपतासै - तृप्त रहता है । सम - बराबर, एकसमान । ग्रासै - ग्रसित करता है, व्याप्त होता है ।

अर्थ (प्रश्न): मन का आसरा प्राण कहे जाते हैं । प्राण कहां से खुराक लेते हैं ? भाव, प्राणों का आसरा कौन हे ? हे योगी ! ज्ञान की प्राप्ति का कौनसा साधन है? योग-साधना में पहुंचे हुए योगी को क्या प्राप्त हो जाता है ?

(उत्तर): हे योगी! सतगुरू के शबद के बिना प्राणों को रस नहीं आता: भाव, गुरू का शबद ही प्राणों का आसरा है, प्राणों की खुराक है । गुर-शबद के बिना अहं की प्यास नहीं मिटती है । जो मनुष्य गुरू के शबद में रम जाते हैं, उन को सदा टिके रहने वाला नाम-रस प्राप्त हो जाता है, वे सच्चे प्रभु में तृप्त रहते हैं, भाव - संतोषी हो जाते हैं ।

(प्रश्न): वह कौन सी मति है जिस के द्वारा मन सदा टिका रहता है? कौन-सी खुराक द्वारा मन सदा तृप्त रहता है ?

(उत्तर): हे नानक! सतगुरू के मिलाप वाली मति द्वारा दुख और सुख एकसमान प्रतीत होते हैं, सतगुरू से जो नाम-भोजन प्राप्त होता है, उसके कारण मौत का डर समीप नहीं आ सकता ।।६१।।

रंगि न राता रसि नही माता ।।
बिनु गुर सबदै जलि बलि ताता ।।
बिंदु न राखिआ, सबदु न भाखिआ।।
पवनु न साधिआ, सचु न अराधिआ ।।
अकथ कथा ले सम करि रहै ।।
तउ नानक आतम राम कउ लहै ।।६२।।

पद अर्थ : रंगि - प्यार में । रसि - रस में । माता - मस्त । ताता - खीझता, वैमनस्य में जलता । बिंदु - वीर्य । बिंदु ना राखिआ - उस मनुष्य ने वीर्य नहीं संभाला, भाव, वह काहे का जती है? पवन न साधिआ - प्राणयाम के द्वारा प्राण वश में नहीं किए ।

अर्थ : सतगुरू के शबद के द्वारा कमाई किए बिना मनुष्य धन-दौलत के धंधों में जल-जल कर खीझता रहता है और प्रभु के प्यार में रमता नहीं और वह प्रभु के आनंद में मस्त नहीं होता ।

जिस मनुष्य ने गुर-शबद का गायन नहीं किया, उसने जती बन कर कुछ नहीं कमाया । जिस ने सच्चे प्रभु का सुमिरन किया, उस ने प्राणायाम करके क्या लिया है ?

हे नानक! यदि मनुष्य अकथ्य प्रभु के गुण गा कर दुख-सुख को एकसमान जान कर जीवन व्यतीत करे, तो वह *सारे-संसार-की-जी-जान-प्रभु* की प्राप्ति कर लेता है ।।६२।।

गुर परसादी रंगे राता ।।
अंम्रितु पीआ साचे माता ।।
गुर वीचारी अगनि निवारी ।।
अपिउ पीओ आतम सुखु धारी ।।
सचु अराधिआ गुरमुखि तरु तारी ।।
नानक बूझै को वीचारी ।।६३।।

पद अर्थ : रंगे - प्रभु के प्यार में रमे । पीआ - पिया । अपिओ - अंमृत। धारी - धारण किया, पाया । वीचारी - विचारवान । तरु तारी - तैरा दिया, पार लगाया ।

अर्थ : सतगुरू की कृपा द्वारा जो मनुष्य प्रभु के प्यार में रम जाता है, वह नाम-अमृत पी लेता है और सच्चे प्रभु में मस्त रहता है ।

जो मनुष्य गुर-शबद के द्वारा विचारवान व चिंतक हो गया है उस ने

तृष्णा की ज्वाला को बुझा लिया है, उसने नाम-अमृत पी लिया है, उसने आत्मिक सुख पा लिया है । हे योगी! गुरू की राह पर चल कर, सच्चे प्रभु का सुमिरन करके संसार-सागर से पार निकल, पर हे नानक! कोई बिरला विचारवान इस बात को समझता है ।।६३।।

उच्चारण : *परसादी* का उच्चारण बिंदी सहित *परसादीं* करना है ।

इहु मनु मैगलु कहा बसीअले, कहा बसै इहु पवना ।।
कहा बसै सु सबदु अउधू, ता कउ चूकै मन का भवना ।।
नदरि करे ता सतिगुरु मेले, ता निज घरि वासा इहु मनु पाए ।।
आपै सापु खाइ ता निरमलु होवै, धावतु वरजि रहाए ।।
किउ मूलु पछाणै आतमु जाणै, किउ ससि घरि सूरु समावै ।।
गुरमुखि हउमै विचहु खोवै, तउ नानक सहजि समावै ।।६४।।

उच्चारण : *कहा, ता विचहु* आदि शब्दों का उच्चारण बिंदी सहित *कहां, तां , विचहुं* करना है ।

इहु मनु मैगलु कहा बसीअले, कहा बसै इहु पवना ।।
कहा बसै सु सबदु अउधू, ता कउ चूकै मन का भवना ।।
नदरि करे ता सतिगुरु मेले, ता निज घरि वासा इहु मनु पाए ।।
आपै आपु खाइ ता निरमलु होवै, धावतु वरजि रहाए ।।
किउ मूलु पछाणै आतमु जाणै, किउ ससि घरि सूरु समावै ।।
गुरमुखि हउमै विचहु खोवै, तउ नानक सहजि समावै ।।६४।।

उच्चारण : *कहा, ता, विचहु* आदि शब्दों का उच्चारण बिंदी सहित *कहां, तां, विचहुं* करना है ।

पद अर्थ : मैगलु - मस्त हाथी । भवना - भटकन । आपै आपु - अपने आप को । धावतु - विकारों की ओर दौड़ता । वरजि - रोक कर । हउमै- खुदगर्जी ।

अर्थ(प्रश्न): मस्त हाथी जैसा यह मन कहां रहता है ? हे योगी? (नानक!) वह शबद कहां बसता है जिसके द्वारा (तुम्हारे मतानुसार) मन की भटकन मिट जाती है ।

(उत्तर): यदि प्रभु कृपा दृष्टि करें तो वे सतगुरू से मिला देते हैं और तब यह मन अपने ही घर में, भाव - अपने आप में टिक जाता है । गुरू के आदेश में चल कर जब मन अपने आपको खा जाता है(भाव, अपने संकल्प विकल्प मिटा देता हे तो मन पवित्र हो जाता है। इस प्रकार गुरू के

उपदेश से मनुष्य माया की ओर दौड़ते हुए मन को रोके रखता है।

(प्रश्न): मनुष्य संसार के मूल प्रभु को कैसे पहचाने ? अपनी आत्मा को कैसे समझे ? चंद्रमा के घर में सूर्य कैसे टिके ?

(उत्तर): जो मनुष्य गुरू के आदेश में चलता है वह अपने अंदर से *अहं* को दूर करता है, तब हे नानक ! वह सहज अवस्था में टिक जाता है ।।६४।।

**इहु मनु निहचलु हिरदै वसीअले, गुरमुखि मूलु पछाणि रहै ।।**
**नाभि पवनु घारि आसणि बैसै, गुरमुखि खोजत ततु लहै ।।**
**सु सबदु निरंतरि निज घारि आछै, त्रिभवण जोति सु सबदि लहै ।।**
**खावै दूख, भूख साचे की, साचे ही त्रिपतासि रहै ।।**
**अनहद बाणी गुरमुखि जाणी, बिरलो को अरथावै ।।**
**नानकु आखै सचु सु भाखै, सचि रपै रंगु कबहू न जावै ।।६५।।**

**पद अर्थ : निहचलु - अडोल हो कर, भटकना से हट कर । आसणि - आसन पर । बैसै - बैठता है । निज घारि - अपने असली घर में । आछै - है । अरथावै - अर्थ समझता है, वास्तकिता समझता है । रपै - रंगा जाता है ।**

अर्थ :जब मनुष्य गुरू के आदेश पर चल कर संसार के मूल प्रभु को पहचानता है( प्रभु के संग मेलजोल बढ़ाता है), तो यह मन अडोल हो कर, हृदय में टिकता है । प्राण (श्वास) नाभि रूपी घर में आसन पर बैठता है(भाव, प्राणों का आरंभ नाभि से होता है), गुरू के द्वारा खोज कर के, मनुष्य वास्तविकता को ढूंढता है । वह शबद जो *दुत्तर सागर* से पार लगाता है समरस हो कर अपने असली घर, सुन्न प्रभु में टिकता है, मनुष्य उस शबद के द्वारा त्रिलोकी में व्यापक प्रभु की ज्योति को ढूंढता है । ज्यों-ज्यों सच्चे प्रभु को मिलने की आकांक्षा बढ़ती है, त्यों-त्यों मनुष्य दुखों को मिटा लेता है, सच्चे प्रभु में ही तृप्त रहता है ।

एकरस व्यापक दैवी-जीवन की लय में किसी बिरले गुरमुख ने जाना है, किसी बिरले ने यह राज़ समझा है । नानक कहता है(जिस ने समझा है) वह सच्चे प्रभु का सुमिरन करता है, सच्चे में रंगा रहता है, उस का यह रंग कभी उतरता नहीं ।।६५।।

**जा इहु हिरदा देह न होती, तउ मनु कैठै रहता ।।**

नाभि कमल असथंभु न होतो, ता पवनु कवन घरि सहता ।।
रूपु न होतो रेखा न काई, ता सबदि कहा लिव लाई ।।
रकतु बिंदु की मढ़ी न होती, मिति कीमति नही पाई ।।
वरनु भेखु असरूपु न जापी, किउकरि जापसि साचा ।।
नानक नामि रते बैरागी, इब तब साचो साचा ।।६६।।

पद अर्थ : मनु - चेतन सत्ता । कैठै- किस स्थान पर । असथंभु - संबल, सहारा, थंभा । सहता- आश्रय लेता था । रकतु- खून । बिंदु - वीर्य । मढ़ी- शरीर । मिति - अंदाजा । असरूपु - स्वरूपु । इब - अब जब शरीर मौजूद है । तब- तब, जब शरीर नहीं था ।

अर्थ (प्रश्न): जब न यह हृदय था और न शरीर, तब मन (चेतन सत्ता) कहां रहती थी? जब नाभि की परिधि का संबल नहीं था तो प्राण(श्वास) किस घर में आश्रय लेते थे? जब कोई रूप-रेखा नहीं थी तब शबद ने कहां लिव जोड़ी हुई थी? जब मां की रक्त और पिता के वीर्य से बना यह शरीर नहीं था तब जिस प्रभु की महानता का अंदाज व मोल नहीं पाया जा सकता, उस में यह मन कैसे सुरति जोड़ता था? जिस प्रभु का रंग, वेश व स्वरूप नहीं दिखलाई देता, वह सदा कायम रहने वाले प्रभु की महानता का अनुमान कैसे लगाया जा सकता है ?

(उत्तर): हे नानक! प्रभु के नाम में रमे हुए वैराग्यवान को हर समय सच्चा प्रभु ही मौजूद प्रतीत होता है ।।६६।।

उच्चारण : ***जा, ता, कहा, नही, किउकरि*** आदि शब्दों का उच्चारण बिंदी सहित *जां,तां, कहां, नहीं, किउंकर* करना है ।

हिरदा देह न होती अउधू,
तउ मनु सुंनि रहै बैरागी ।।
नाभि कमलु असथंभु न होतो
ता निज घरि बसतउ पवनु अनरागी ।।
रूपु न रेखिआ जाति न होती,
तउ अकुलीणि रहतउ सबदु सु सारु ।।
गउनु गगनु जब तबहि न होतउ,
त्रिभवण जोति आपे निरंकारु ।।
वरनु भेखु असरूपु सु ऐको,
एको सबदु विडाणी ।।

साच बिना सूचा को नाही,
नानक अकथ कहाणी ।।६७।।

उच्चारण : *अकथ* का उच्चारण आद्याक्षर सहित *अकत्थ* करना है ।

पद अर्थ : अनरागी - प्रेमी, हो कर । जाति- अस्तित्व, उत्पत्ति । अकुलीणि - कुल-रहित प्रभु में । गउनु - गमन, चाल, जगत की चाल, संसार का अस्तित्व । गगनु - आकाश । विडाणी - आश्चर्य ।

अर्थ (उत्तर): हे योगी ! जब न हृदय था न शरीर था, तब वैरागी मन निर्गुण प्रभु में टिका हुआ था । जब नाभी चक्कर रूपी थंभा नहीं था तब वह श्रेष्ट शबद कुल-रहित प्रभु में रहता था । जब संसार की हस्ती नहीं थी, आकाश नहीं था, तब आकार-रहित त्रृभवणी ज्योति(भाव, अब त्रिलोकी में व्यापक होने वाली ज्योति) स्वयं ही थी । एकाएक आश्चर्य शबद रूप प्रभु ही था, वही संसार का रंग, वेश व रूप था ।

हे नानक! सदा कायम रहने वाले उस प्रभु को मिले बिना, जिस के सही स्वरूप का कोई वर्णन नहीं कर सकता, कोई मनुष्य पवित्र नहीं है।।६७।।

कितु कितु बिधि जगु उपजै पुरखा, कितु कितु दुखि बिनसि जाई ।।
हउमै विचि जगु उपजै पुरखा, नामि विसरिऐ दुखु पाई ।।
गुरमुखि होवै सु गिआनु ततु बीचारै, हउमै सबदि जलाए ।।
तनु मनु निरमलु निरमल बाणी, साचै रहै समाए ।।
नामे नामि रहै बैरागी, साचु रखिआ उरि धारे ।।
नानक बिनु नावै जोगु कदे न होवै, देखहु रिदै बीचारे ।।६८।।

पद अर्थ : कितु बिधि - किस विधि से ? पुरखा - हे पुरुष ! दुखि - दुख से । हउमै - अपने अलग अस्तित्व का ख्याल । नामि विसरिऐ - यदि नाम भूल जाए । नामे नामि - विशुद्ध प्रभु-नाम में । जोगु - मिलाप ।

अर्थ (प्रश्न): हे मानव!संसार किस विधि से पैदा होता है, किस तरह दुख में पड़ता है और कैसे इसका नाश होता है ?

(उत्तर): हे मनुष्य! संसार अहं में पैदा होता है । यदि इसे प्रभु का नाम भूल जाय तो यह दुख पाता है । जो मनुष्य गुरू के आदेश में चलता है, वह तत्व ज्ञान की विचार करता है और अपने अहं को गुरू के शबद के द्वारा जलाता है, मारता है । उस का तन, मन व बाणी पवित्र हो जाते हैं और वह सदा कायम रहने वाले प्रभु में टिका रहता है । वह मनुष्य प्रभु चरणों का मतवाला हो कर निरोल प्रभु-नाम में ही जुड़ा रहता है, सदा प्रभु को हृदय में

टिकाए रखता है । हे नानक ! प्रभु के नाम के बिना प्रभु के संग मिलाप कभी नहीं हो सकता, अपने हृदय में विचार कर देख लो(भाव, आपका अपना निजी अनुभव यही गवाही देगा।।६८।।

गुरमुखि साचु सबदु बीचारै कोइ ।।
गुरमुखि सचु बाणी परगटु होइ ।।
गुरमुखि मनु भीजै, विरला बूझै कोइ ।।
गुरमुखि निज घरि वासा होइ ।।
गुरमुखि जोगी जुगति पछाणै ।।
गुरमुखि नानक ऐको जाणै ।।६९।।

पद अर्थ : बाणी - गुरू की बाणी के द्वारा । निज घरि - अपने असल रूप में । जुगति - योग की युक्ति ।

अर्थ : यदि कोई मनुष्य गुरू के आदेश में चलता है, वह सच्चे शबद की विचार करता है, सतगुरू की बाणी के द्वारा सच्चा प्रभु उस के हृदय में प्रकट हो जाता है ।

गुरमुख मनुष्य का मन नामरस में भीगता है, इस बात को कोई बिरला ही समझता है । गुरू के सम्मुख मनुष्य का निवास अपने असल स्वरूप में हुआ रहता है ।

जो मनुष्य सतगुरू के आदेश में चलता है वही असल योगी है, वह प्रभु के संग मिलाप की युक्ति को पहचानता है । हे नानक! गुरू के आदेश में चलने वाला मनुष्य एक प्रभु को हर स्थान पर व्यापक जानता है।।६९।।

बिनु सतिगुर सेवे, जोगु न होई ।।
बिनु सतिगुर भेटे, मुकति न कोई ।।
बिनु सतिगुर भेटे, नामु पाइआ न जाइ ।।
बिनु सतिगुर भेटे, महा गरबि गुबारि ।।
नानक बिनु गुर, मुआ जनमु हारि ।।७०।।

उच्चारण : *महा* का उच्चारण बिंदी सहित *महां* करना है ।

पद अर्थ : गरबि - अहंकार में । गुबारि - अंधेरे में । हारि - हार कर ।

अर्थ: सतगुरू की सेवा के बिना प्रभु के संग मेल नहीं होता । गुरू को मिले बिना मुक्ति नहीं प्राप्त होती । गुरू को मिले बिना प्रभु का नाम प्राप्त नहीं हो सकता और मनुष्य बहुत कष्ट उठाता है । गुरू को मिले बिना मनुष्य

घोर-अंधकार में, अहंकार में रहता है । हे नानक! सतगुरू के बिना मनुष्य जीवन की बाजी हार कर मरता है ।।७०।।

गुरमुखि मनु जीता, हउमै मारि ।।
गुरमुखि साचु रखिआ उरधारि ।।
गुरमुखि जगु जीता, जमकालु मारि बिदारि ।।
गुरमुखि दरगह न आवै हारि ।।
गुरमुखि मेलि मिलाए सुो जाणै ।।
नानक गुरमुखि सबदि पछाणै ।।७१।।

पद अर्थ : उर - हृदय । बिदारि - फाड़ कर । मेलि - संयोग के द्वारा, संयोग बना कर । सुो - (नोट: अक्षर *स* के साथ दो मात्राएं हैं, असली मात्रा ( ो ) है, पर यहां पर छंद की चाल को ठीक रखने के लिए ( ु ) की मात्रा को पढ़ना है ।

अर्थ : जो मनुष्य गुरू के आदेश में चलता है उस ने अपनी अहं की भावना को मार कर अपना मन जीत लिया है, उस ने सदा टिके रहने वाले प्रभु को अपने हृदय में टिका कर रखा है । मौत का डर मार कर उस ने संसार को जीत लिया है । वह जीवन की बाजी हार कर प्रभु की हजूरी में नहीं जाता, भाव जीत कर जाता है ।

गुरमुख मनुष्य को प्रभु संयोग बना कर अपने में मिला लेता है - इस भेद को वह गुरमुख ही समझता है । हे नानक ! गुरू के सम्मुख मनुष्य गुरू के शबद के द्वारा प्रभु के संग जान-पहचान बना लेता है ।।७१।।

सबदै का निबेड़ा सुणि तू अउधू, बिनु नावै जोगु न होई ।।
नामे राते अनदिनु माते, नामै ते सुखु होई ।।
नामै ही ते सभु परगटु होवै, नामे सोझी पाई ।।
बिनु नावै भेख करहि बहुतेरे, सचै आपि खुआई ।।
सतिगुर ते नामु पाईऐ अउधू, जोग जुगति ता होई ।।
करि बीचारु मनि देखहु नानक, बिनु नावै मुकति न होई ।।७२।।

उच्चारण : (1) *नावै, करहि (करै), ता* आदि शब्दों का उच्चारण बिंदी सहित *नावैं, करहिं (करैं), तां* करना है ।

(2) *देखहु* का उच्चारण *देखो* करना है ।

पद अर्थ : सबदै का - सारे शबद का, सारे उपदेश का । निबेड़ा - फैसला, सार । माते - मतवाले, मस्त । सचै - सच्चे प्रभु ने । खुआई - कुमार्ग पर पड़े

हुए हैं । अनदिनु - हर रोज, हर समय ।

अर्थ : हे योगी! सुनो, सारे उपदेश का सार यह है कि प्रभु के नाम के बिना योग (प्रभु का मिलाप) नहीं होता । जो प्रभु के नाम में रमे हुए हैं, वही हर समय मतवाले हैं । नाम से ही सुख प्राप्त होता है, नाम से ही पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है और नाम से ही सारी सूझ पैदा होती है ।

प्रभु के नाम को त्याग कर जो मनुष्य अन्य कई प्रकार के पाखंड करते हैं, उन को सच्चे प्रभु ने स्वयं ही कुमार्ग पर डाल दिया है ।

हे योगी! सतगुरू से प्रभु का नाम प्राप्त होता है, तो ही योग की युक्ति सिरे चढ़ती है । हे नानक ! मन में विचार कर देख लो, नाम के बिना मुक्ति नहीं मिलती है । भाव - आपका अपना निजी अनुभव बता देगा कि नामसुमिरन के बिना अहं से मुक्ति नहीं हो सकती ।।७२।।

तेरी गति मिति तूहै जाणहि, किआ को आखि वखाणै ।।
तू आपे गुपता आपे परगटु, आपे सभि रंग माणै ।।
साधिक सिध गुरू बहु चेले, खोजत फिरहि फुरमाणै ।।
मागहि नामु पाइ इह भिखिआ तेरे दरसन कउ कुरबाणै ।।
अबिनासी प्रभि खेलु रचाइआ, गुरमुखि सोझी होई ।।
नानक, सभि जुग आपे वरतै, दूजा अवरु न कोई ।।७३।।१।।

उच्चारण :(1) तू का उच्चारण बिंदी सहित तूं करना है ।

(2) *जाणहि(जाणै), फिरहि (फिरै), मांगहि(मागै), दरसन* ਦਰਸਨ *अबिनासी* ਅਬਿਨਾਸੀ आदि शब्दों का उच्चारण बिंदी सहित *जाणहिं(जाणैं), फिरहिं(फिरैं), मांगहिं(मागैं) दर्शन* ਦਰਸ਼ਨ, *अविनाशी* ਅਬਿਨਾਸ਼ੀ करना है ।

नोट : अंत में दिए गए अंक *१* का अर्थ यह है कि *सिध गोसटि* की ७३ पउड़ियों को समूचे तौर पर केवल एक बाणी समझना है, सारी बाणी का एक मिलाजुला संयुक्त भाव है ।

(इस लंबी बाणी के जैसे प्रारंभ में *मंगलाचरण* की पउड़ी थी, अब पउड़ी नंबर 72 तक *प्रभु-मिलाप* के बारे में चर्चा समाप्त कर अंत में *प्रार्थना* है )।

पद अर्थ : गति- हालत, दशा । मिति- गिनती । साधिक - साधना करने वाले । सिध- पहुंचे हुए योगी । फुरमाणै- फुर्मान में ही, तेरे आदेश में ही। प्रभि - प्रभु ने ।

अर्थ : हे प्रभु! यह बात तूं ही जानता है कि तूं कैसा है और कितना बड़ा है । कोई और तेरे बारे में क्या बता सकता है ? तूं स्वयं ही छिपा हुआ

है, तूं स्वयं ही प्रकट है, भाव - तूं स्वयं ही सूक्ष्म व अस्थूल है । तूं स्वयं ही दुनियां के सारे रंगो का आनंद ले रहा है ।

साधना करने वाले पहुंचे हुए योगी, गुरू व उन के कई चेले, तेरे आदेश में तुझे खेजते फिरते हैं । तेरे से तेरा नाम(धन) मांगते हैं, तेरे से यह भिक्षा ले कर तेरे दीदार से बलि-बलि जाते हैं ।

गुरू के द्वारा ही इस बात की समझ पड़ जाती है कि अविनाशी प्रभु ने संसार की रचना रची है । हे नानक ! सारे ही युगों में वह स्वयं ही मौजूद है, कोई अन्य उस जैसा नहीं है ।।७३।।१।।

-----